मिथिलेश्वर

(1950)

मिथिलेश्वर का जन्म 31 दिसंबर 1950 को बिहार के भोजपुर ज़िले के वैसाडीह गाँव में हुआ। इन्होंने हिंदी में एम.ए. और पीएच.डी. करने के उपरांत व्यवसाय के रूप में अध्यापन कार्य को चुना। इन दिनों आरा के विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर कार्यरत हैं।

मिथिलेश्वर ने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन को बखूबी उकेरा है। इनकी कहानियाँ वर्तमान ग्रामीण जीवन के विभिन्न अंतर्विरोधों को उद्घाटित करती हैं, जिनसे पता चलता है कि आज़ादी के बाद ग्रामीण जीवन वास्तव में किस हद तक भयावह और जटिल हो गया है। बदलाव के नाम पर हुआ यह है कि आम लोगों के शोषण के तरीके बदल गए हैं।

मिथिलेश्वर की प्रमुख कृतियाँ हैं–*बाबूजी, मेघना का निर्णय, हरिहर काका, चल खुसरो घर आपने* (कहानी संग्रह); *झुनिया, युद्धस्थल, प्रेम न बाड़ी ऊपजे* और *अंत नहीं* (उपन्यास)। अपने लेखन के लिए इन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार सहित अन्य कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

गुरदयाल सिंह

(1933–2016)

पंजाब के जैतो कस्बे में 10 जनवरी 1933 को एक साधारण दस्तकार परिवार में जन्मे गुरदयाल सिंह ने बचपन में कीलों, हथौड़ों से काम लेते हुए शिक्षा पूरी की और कलम पकड़ी। 1954 से 1970 तक स्कूल में अध्यापक रहे। पहली कहानी 1957 में *पंच दरिया* पत्रिका में प्रकाशित हुई। जब कालेज में प्राध्यापक हुए तो अपने ही उपन्यास पढ़ाने का मौका मिला। अंततः युनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर के पद से अवकाश ग्रहण किया।

गुरदयाल ठेठ ग्रामीण परिवेश और भावबोध के लेखक के रूप में जाने जाते हैं। बड़े सहज रूप से वे अपने पात्रों का चयन खेतिहर मज़दूरों, पिछड़े और दलित वर्ग के लोगों के बीच से करते हैं जो सदियों से अपने समाज की उस दूषित व्यवस्था के शिकार हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी उनकी शारीरिक हड्डियों को ही नहीं गलाती रही है, उनकी पूरी मानसिकता को दीन, हीन और बेबस बनाए हुए है।

पंजाबी भाषा में उल्लेखनीय योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित गुरदयाल सिंह को अपने लेखन के लिए साहित्य अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू सम्मान, पंजाब की साहित्य अकादमी सहित कई अन्य पुरस्कारों से सम्मानित होने का गौरव प्राप्त हुआ है। उन्होंने बतौर लेखक कई देशों की यात्रा भी की।

उन्होंने अब तक नौ उपन्यास, दस कहानी संग्रह, एक नाटक, एक एकांकी संग्रह, बाल साहित्य की दस पुस्तकें और विविध गद्य की दो पुस्तकों की रचना की है। गुरदयाल सिंह की प्रमुख कृतियाँ हैं–*मढ़ी का दीवा, अथ-चाँदनी रात, पाँचवाँ पहर, सब देश पराया, साँझ-सबेरे और* (आत्मकथा) *क्या जानूँ मैं कौन?* गुरदयाल सिंह का निधन 16 अगस्त 2016 को हुआ।

राही मासूम रज़ा

(1927–1992)

राही मासूम रज़ा का जन्म 1 सितंबर 1927 को पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर के गंगौली गाँव में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। अलीगढ़ युनिवर्सिटी से उर्दू साहित्य में पीएच.डी. करने के बाद उन्होंने कुछ साल तक वहीं अध्यापन कार्य किया। फिर वे मुंबई चले गए जहाँ सैकड़ों फ़िल्मों की पटकथा, संवाद और गीत लिखे। प्रसिद्ध धारावाहिक 'महाभारत' की पटकथा और संवाद लेखन ने उन्हें इस क्षेत्र में सर्वाधिक ख्याति दिलाई।

राही मासूम रज़ा एक ऐसे कवि-कथाकार थे जिनके लिए भारतीयता आदमीयत का पर्याय रही। इनके पूरे लेखन में आम हिंदुस्तानी की पीड़ा, दुख-दर्द, उसकी संघर्ष क्षमता की अभिव्यक्ति है। राही ने जनता को बाँटने वाली शक्तियों, राजनीतिक दलों, व्यक्तियों, संस्थाओं का खुला विरोध किया। उन्होंने संकीर्णताओं और अंधविश्वासों, धर्म और राजनीति के स्वार्थी गठजोड़ आदि को भी बेनकाब किया।

राही मासूम रज़ा की प्रमुख कृतियाँ हैं—*आधा गाँव, टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी, कटरा बी आर्ज़ू, असंतोष के दिन, नीम का पेड़* (सभी हिंदी उपन्यास); *मुहब्बत के सिवा* (उर्दू उपन्यास); *मैं एक फेरी वाला* (कविता संग्रह); *नया साल, मौजे गुल : मौजे सबा, रक्से-मय, अजनबी शहर : अजनबी रास्ते* (सभी उर्दू कविता संग्रह), *अट्ठारह सौ सत्तावन* (हिंदी-उर्दू महाकाव्य) और *छोटे आदमी की बड़ी कहानी* (जीवनी)। राही का निधन 15 मार्च 1992 को हुआ।

टिप्पणी

CERT
Publi

संचयन

भाग 2

कक्षा 10 के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

(द्वितीय भाषा)

1058

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मार्च 2007 चैत्र 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
जनवरी 2009 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
नवंबर 2010 अग्रहायण 1932
जनवरी 2012 माघ 1933
मार्च 2013 फाल्गुन 1934
नवंबर 2013 कार्तिक 1935
नवंबर 2014 अग्रहायण 1936
दिसंबर 2015 पौष 1937
दिसंबर 2016 पौष 1938
दिसंबर 2017 पौष 1939
दिसंबर 2018 अग्रहायण 1940

PD 350T RSP

© ***राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007***

₹ 30.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफ़सेट वर्क्स, जी-181, सैक्टर-63, नोएडा - 201 301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-665-9

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा इसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
सहायक संपादक	:	*मुन्नी लाल*
उत्पादन सहायक	:	*ओम प्रकाश*

आवरण एवं चित्र
कल्लोल मजूमदार

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल–केंद्रित शिक्षा व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना–सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन कर सकेंगे। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय–सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह

पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए परिषद् उनके प्राचार्यों एवं उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में उदारतापूर्वक सहयोग दिया। परिषद् माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

अनुपम मिश्र, *सचिव,* गांधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली

उर्मिला शर्मा, *अध्यापिका,* जवाहर नवोदय विद्यालय, जाफ़रपुर, नयी दिल्ली

प्रदीप जैन, *वरिष्ठ अध्यापक,* मॉडर्न स्कूल, बाराखंबा रोड, नयी दिल्ली

रवींद्र कात्यायन, *प्रवक्ता,* हिंदी विभाग, एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय, मुंबई

वीरेंद्र जैन, *पत्रकार,* सांध्य टाइम्स, नयी दिल्ली

विशम्भर, *संपादक,* शिक्षा विमर्श, टोडी रमजानपुरा, जयपुर

पद्मजा प्रधान, *वरिष्ठ अध्यापिका,* डी.एम. स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., भुवनेश्वर

कामिनी भटनागर, *प्रवक्ता,* सी.आई.ई.टी, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

स्नेहलता प्रसाद, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् विशेष रूप से आमंत्रित दिलीप सिंह, *रजिस्ट्रार,* दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा चेन्नई; उषा शर्मा, *प्रवक्ता,* डी.आई.ई.टी. मोती बाग नयी दिल्ली; शारदा शर्मा, *प्रवक्ता,* डी.आई.ई.टी. आर.के. पुरम् नयी दिल्ली की आभारी है।

परिषद् रचनाकारों के परिजनों / संस्थानों / प्रकाशकों के प्रति आभारी है जिन्होंने उनकी रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* (भाषा विभाग) परशराम कौशिक; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* सचिन कुमार; *कॉपी एडीटर* पूजा नेगी की आभारी है।

भूमिका

कक्षा 10 हिंदी 'ब' पाठ्यक्रम के लिए पूरक पाठ्यक्रम के निर्माण में विद्यार्थियों की पूर्वार्जित भाषा योग्यता, बौद्धिक क्षमता एवं रुचि को ध्यान में रखते हुए यह प्रयास किया गया है कि इसके माध्यम से वे विभिन्न साहित्यिक विधाओं की विशेषताओं से परिचित हों और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी विकसित हो। यह भी प्रयत्न किया गया है कि जो साहित्यिक विधाएँ नवीं कक्षा की मुख्य पाठ्यपुस्तक **स्पर्श भाग 1** और पूरक पाठ्यपुस्तक **संचयन भाग 1** में सम्मिलित नहीं हो पाई हैं, वे इस पूरक पठन की पुस्तक में आ जाएँ। इस दृष्टि से इस पुस्तक में कहानी, आत्मकथा एवं उपन्यास अंश को स्थान दिया गया है। इनके अध्ययन से अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थी इन विविध विधाओं की शैलीगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

आज देश में संप्रदाय और असहिष्णुता की प्रवृत्ति के कारण हम भारतीय जीवन-मूल्यों तथा अपनी समन्वयवादी सामासिक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। समुचित साहित्य की शिक्षा इस प्रवृत्ति को दूर करने और विद्यार्थियों में राष्ट्र के प्रति स्वस्थ अभिरुचि विकसित करने में एक प्रेरक साधन बन सकती है। इस दृष्टि से पाठ्य-सामग्री के चयन और संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को केंद्र में रखा गया है–

पठन-सामग्री ऐसी हो जिसके माध्यम से विद्यार्थी लोक-परंपरा, साहित्य, कला, विज्ञान, समाज आदि के क्षेत्र में अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित हों और उसके प्रति उनमें सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो।

विधागत पाठ्य-सामग्री के चयन में रोचकता और विविधता का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है।

पठन-सामग्री के बोधन की दिशा में अध्यापक एवं विद्यार्थियों को स्पष्ट दृष्टि देने के विचार से प्रत्येक पाठ में आए कठिन शब्दों के अर्थ नीचे फुटनोट में दे दिए गए हैं जिससे पाठ को पढ़ते समय

अर्थ ग्रहण में कठिनाई न हो तथा प्रत्येक पाठ के अंत में बोध-प्रश्न भी दे दिए गए हैं। इन प्रश्नों के माध्यम से न केवल विद्यार्थियों के बोध का मूल्यांकन हो सकेगा बल्कि पाठ में निहित विविध शैक्षणिक बिंदु भी उभरकर सामने आ सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में कहानी, आत्मकथ्य अंश और उपन्यास अंश को लिया गया है। इन विधाओं के द्वारा निम्नलिखित विधाओं की शैलीगत विशिष्टता से छात्र परिचित होने के साथ-साथ परिवार, समाज और सांस्कृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि पर रचित रचनाओं से भी परिचित हो सकेंगे। इन पाठों द्वारा मुख्य रूप से यह स्पष्ट किया गया है कि–

हरिहर काका–घर वह जगह है जो अपनों के सुख-दुख में, आपद-विपद में, हारी-बीमारी में, हर्ष-उल्लास में एक-दूसरे के काम आना सिखाता है। एक-दूसरे की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने की सीख और अवसर देता है। धर्मस्थल इसी अपनेपन को, इसी सहृदयता को, सहयोग की इसी भावना को अपनों से कहीं आगे प्राणीमात्र तक विस्तार देने की समझ और संस्कार देता है।

यदि कभी किसी के मामले में घर और धर्मस्थल यानी परिवार और प्रभु दरबार दोनों ही अपनी भूमिका छोड़ अपने मूल स्वभाव को तिलांजलि दे दें, तो?

तब जो अराजकता और अनाचार, अन्याय और आपाधापी मचेगी, वह वैसी ही होगी जैसी हरिहर काका के संग हुई।

कथाकार मिथिलेश्वर ने *हरिहर काका* कहानी के बहाने ग्रामीण पारिवारिक जीवन में ही नहीं हमारे आस्था के प्रतीक धर्मस्थानों और धर्मध्वजा धारकों में जो स्वार्थलोलुपता घर करती जा रही है उसे उजागर किया है। हरिहर काका एक वृद्ध और निःसंतान व्यक्ति हैं, वैसे उनका भरा-पूरा संयुक्त परिवार है। गाँव के लोग कुमार्ग पर न चलें यह सीख देने के लिए एक ठाकुरबाड़ी भी है, लेकिन हरिहर काका की विडंबना देखिए कि यही दोनों उनके लिए काल और विकराल बन जाते हैं। न तो परिवार को हरिहर काका की फिक्र है न मठाधीश को, दोनों उन्हें सुख नहीं दुख देने में, उनका हित नहीं अहित करने में ही मगन रहते हैं। दोनों का लक्ष्य एक ही है, हरिहर काका की जमीन हथियाना। इसके लिए उन्हें चाहे हरिहर काका के साथ छल, बल, कल का प्रयोग भी क्यों न करना पड़े। पारिवारिक संबंधों में भ्रातृभाव को बेदखल कर पाँव पसारती जा रही स्वार्थ लिप्सा और

धर्म की आड़ में फलने-फूलने का अवसर पा रही हिंसा वृत्ति को बेनकाब करती यह कहानी आज के ग्रामीण ही नहीं शहरी जीवन का भी यथार्थ उजागर करती है।

सपनों के-से दिन—शिक्षा काल में पढ़ना ही विद्यार्थी का लक्ष्य होता है। प्राय: हर विषय की कोई न कोई किताब पढ़नी होती है। इस पढ़े हुए में से बहुत कुछ ऐसा होता है जो पूरी कोशिश के बावजूद भी याद नहीं रहता और बहुत कुछ ऐसा भी होता है जो एक बार पढ़ लेने के बाद हमेशा हमारी स्मृति में बस जाता है।

प्रस्तुत आत्मकथांश को दूसरी कोटि में रखा जा सकता है जिसे पढ़ने के बाद भुला पाना कठिन ही नहीं असंभव हो जाता है। यह अंश बताता है कि समाज में कुछ लोग ऐसे भी थे जो शिक्षा के महत्त्व से पूरी तरह अनजान थे। ऐसे लोग न केवल खुद अनपढ़ रहे बल्कि उनके कारण उनके परिवार की भावी पीढ़ियाँ भी निरक्षर रह गईं।

इस पाठ के स्मृति में बने रहने की जो सबसे अहम वजह है, वह यह है कि इसे पढ़ते हुए पाठक को बार-बार ऐसा लगता है कि जो दिनचर्या मेरी थी, जो शरारतें, चुहलबाजियाँ, आकांक्षाएँ, सपने मेरे थे, जो मैंने आज तक किसी को बताए भी नहीं, वे लेखक को कैसे मालूम हो गए और उसने बिना मुझसे मिले ही मेरी दैनंदिनी कैसे लिख ली?

टोपी शुक्ला—अपने वे होते हैं जिनसे अपनापन मिले। फिर भले ही वह अपना, अपने घर का, अपनी जाति का, अपने धर्म का हो या न हो। जिसमें अपनापन न मिले वह भले ही रातोंदिन साथ भी रहता हो, फिर भी कम से कम कोई बच्चा तो उसे अपना नहीं मान सकता। चूँकि बचपन प्रेम के रिश्ते के अलावा किसी और रिश्ते को कुबूल नहीं करता। बालमन किसी स्वार्थ या हिसाब से चलायमान नहीं होता। निश्छल वृद्ध मन की भी कुछ-कुछ यही दशा होती है। राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'टोपी शुक्ला' के इस अंश के पात्र भी अपनेपन की तलाश में भटकते, अटकते नज़र आते हैं। कथानायक टोपी के अपनेपन की पहली खोज पूरी होती है अपने दोस्त अज़ीज़ इफ़्फ़न की दादी माँ में, अपने घर की नौकरानी सीता में और अपने ग्रामांचल की बोली-बानी में।

कहते हैं 'प्रेम न माने जात-विजात, भूख न जाने खिचड़ी भात'। टोपी को भी इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि जिसके आँचल की छाँव में बैठकर वह स्नेह का अपार भंडार पाता है, प्रेम के सागर में गोते लगाता है उनका रहन-सहन क्या है, खान-पान क्या है, रीति-रिवाज क्या है, सामाजिक हैसियत क्या है?

हालाँकि टोपी के पिता एक जाने-माने डाक्टर हैं, परिवार भी भरा-पूरा है, घर में किसी भी चीज़ का अभाव नहीं था फिर भी वह लाख मना करने के बावजूद इफ़्फ़न की हवेली की तरफ़ बरबस खिंचा चला जाता है। काश! उसे वहाँ जाने से रोकने वाले परिवार के लोग कभी इस बात का भी पता लगाने की जहमत उठाते कि टोपी जैसा आज्ञाकारी बालक आखिर उनकी एक यही हिदायत क्यों नहीं मानता!

आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों को रुचिकर लगेगी और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने के साथ-साथ विभिन्न जीवन मूल्यों के प्रति समझ भी उत्पन्न कर सकेगी।

CERT Publi

पाठ सूची

	आमुख		*iii*
	भूमिका		*vii*
1.	**मिथिलेश्वर**	– हरिहर काका	1
2.	**गुरदयाल सिंह**	– सपनों के-से दिन	20
3.	**राही मासूम रज़ा**	– टोपी शुक्ला	32
	लेखक परिचय		45

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्‌द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

1058CH01

हरिहर काका

हरिहर काका के यहाँ से मैं अभी-अभी लौटा हूँ। कल भी उनके यहाँ गया था, लेकिन न तो वह कल ही कुछ कह सके और न आज ही। दोनों दिन उनके पास मैं देर तक बैठा रहा, लेकिन उन्होंने कोई बातचीत नहीं की। जब उनकी तबीयत के बारे में पूछा तब उन्होंने सिर उठाकर एक बार मुझे देखा। फिर सिर झुकाया तो दुबारा मेरी ओर नहीं देखा। हालाँकि उनकी एक ही नज़र बहुत कुछ कह गई। जिन यंत्रणाओं[1] के बीच वह घिरे थे और जिस मन:स्थिति में जी रहे थे, उसमें आँखें ही बहुत कुछ कह देती हैं, मुँह खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

हरिहर काका की ज़िंदगी से मैं बहुत गहरे में जुड़ा हूँ। अपने गाँव में जिन चंद लोगों को मैं सम्मान देता हूँ, उनमें हरिहर काका भी एक हैं। हरिहर काका के प्रति मेरी आसक्ति[2] के अनेक व्यावहारिक और वैचारिक कारण हैं। उनमें प्रमुख कारण दो हैं। एक तो यह कि हरिहर काका मेरे पड़ोस में रहते हैं और दूसरा कारण यह कि मेरी माँ बताती है, हरिहर काका बचपन में मुझे बहुत दुलार करते थे। अपने कंधे पर बैठाकर घुमाया करते थे। एक पिता अपने बच्चे को जितना प्यार करता है, उससे कहीं ज़्यादा प्यार हरिहर काका मुझे करते थे। और जब मैं सयाना[3] हुआ तब मेरी पहली दोस्ती हरिहर काका के साथ ही हुई। हरिहर काका ने भी जैसे मुझसे दोस्ती के लिए ही इतनी उम्र तक प्रतीक्षा की थी। माँ बताती है कि मुझसे पहले गाँव में किसी अन्य से उनकी इतनी गहरी दोस्ती नहीं हुई थी। वह मुझसे कुछ भी नहीं छिपाते थे। खूब खुलकर बातें करते थे। लेकिन फिलहाल मुझसे भी कुछ कहना उन्होंने बंद कर दिया है। उनकी इस स्थिति ने मुझे चिंतित कर दिया है। जैसे कोई नाव बीच मझधार[4] में फँसी हो और उस पर सवार लोग चिल्लाकर भी अपनी रक्षा न कर सकते हों, क्योंकि उनकी चिल्लाहट दूर तक फैले सागर के बीच उठती-गिरती लहरों में विलीन[5] हो जाने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती है? मौन होकर जल-समाधि लेने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प[6] नहीं। लेकिन मन इसे मानने को कतई तैयार नहीं। जीने की लालसा की वजह से बेचैनी और छटपटाहट बढ़ गई हो, कुछ ऐसी ही स्थिति के बीच हरिहर काका घिर गए हैं।

---

1. यातनाओं/क्लेशों/कष्टों 2. लगाव 3. बड़ा होना 4. जल प्रवाह या भवसागर के मध्य में 5. लुप्त होना 6. दूसरा उपाय

हरिहर काका के बारे में मैं सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि वह यह समझ नहीं पा रहे हैं कि कहें तो क्या कहें? अब कोई ऐसी बात नहीं जिसे कहकर वह हलका हो सकें। कोई ऐसी उक्ति नहीं जिसे कहकर वे मुक्ति पा सकें। हरिहर काका की स्थिति में मैं भी होता तो निश्चय ही इस गूँगेपन का शिकार हो जाता।

हरिहर काका इस स्थिति में कैसे आ फँसे? यह कौन-सी स्थिति है? इसके लिए कौन ज़िम्मेवार है? यह सब बताने से पहले अपने गाँव का और खासकर अपने गाँव की ठाकुरबारी[7] का संक्षिप्त परिचय मैं आपको दे देना उचित समझता हूँ क्योंकि उसके बिना तो यह कहानी अधूरी ही रह जाएगी।

मेरा गाँव कस्बाई शहर आरा से चालीस किलोमीटर की दूरी पर है। हसनबाज़ार बस स्टैंड के पास। गाँव की कुल आबादी ढाई-तीन हज़ार होगी। गाँव में तीन प्रमुख स्थान हैं। गाँव के पश्चिम किनारे का बड़ा-सा तालाब। गाँव के मध्य स्थित बरगद का पुराना वृक्ष और गाँव के पूरब में ठाकुरजी का विशाल मंदिर, जिसे गाँव के लोग ठाकुरबारी कहते हैं।

गाँव में इस ठाकुरबारी की स्थापना कब हुई, इसकी ठीक-ठीक जानकारी किसी को नहीं। इस संबंध में गाँव में जो कहानी प्रचलित है वह यह कि वर्षों पहले जब यह गाँव पूरी तरह बसा भी नहीं था, कहीं से एक संत आकर इस स्थान पर झोंपड़ी बना रहने लगे थे। वह सुबह-शाम यहाँ ठाकुरजी की पूजा करते थे। लोगों से माँगकर खा लेते थे और पूजा-पाठ की भावना जाग्रत करते थे। बाद में लोगों ने चंदा करके यहाँ ठाकुरजी का एक छोटा-सा मंदिर बनवा दिया। फिर जैसे-जैसे गाँव बसता गया और आबादी बढ़ती गई, मंदिर के कलेवर में भी विस्तार होता गया। लोग ठाकुरजी को मनौती मनाते कि पुत्र हो, मुकदमे में विजय हो, लड़की की शादी अच्छे घर में तय हो, लड़के को नौकरी मिल जाए। फिर इसमें जिनको सफलता मिलती, वह खुशी में ठाकुरजी पर रुपये, ज़ेवर, अनाज चढ़ाते। अधिक खुशी होती तो ठाकुरजी के नाम अपने खेत का एक छोटा-सा टुकड़ा लिख देते। यह परंपरा आज तक जारी है। अधिकांश लोगों को विश्वास है कि उन्हें अच्छी फसल होती है तो ठाकुरजी की कृपा से। मुकदमे में उनकी जीत हुई तो ठाकुरजी के चलते। लड़की की शादी इसीलिए जल्दी तय हो गई, क्योंकि ठाकुरजी को मनौती मनाई गई थी। लोगों के इस विश्वास का ही यह परिणाम है कि गाँव की अन्य चीज़ों की तुलना में ठाकुरबारी का विकास हज़ार गुना अधिक हुआ है। अब तो यह गाँव ठाकुरबारी से ही पहचाना जाता है। यह ठाकुरबारी न सिर्फ़ मेरे गाँव की एक बड़ी और विशाल ठाकुरबारी है बल्कि पूरे इलाके में इसकी जोड़ की दूसरी ठाकुरबारी नहीं।

ठाकुरबारी के नाम पर बीस बीघे खेत हैं। धार्मिक लोगों की एक समिति है, जो ठाकुरबारी की देख-रेख और संचालन[8] के लिए प्रत्येक तीन साल पर एक महंत और एक पुजारी की नियुक्ति[9] करती है।

---

7. देवस्थान 8. चलाना 9. लगाया गया

ठाकुरबारी का काम लोगों के अंदर ठाकुरजी के प्रति भक्ति-भावना पैदा करना तथा धर्म से विमुख हो रहे लोगों को रास्ते पर लाना है। ठाकुरबारी में भजन-कीर्तन की आवाज़ बराबर गूँजती रहती है। गाँव जब भी बाढ़ या सूखे की चपेट में आता है, ठाकुरबारी के अहाते में तंबू लग जाता है। लोग और ठाकुरबारी के साधु-संत अखंड हरिकीर्तन शुरू कर देते हैं। इसके अतिरिक्त गाँव में किसी भी पर्व-त्योहार की शुरुआत ठाकुरबारी से ही होती है। होली में सबसे पहले गुलाल ठाकुरजी को ही चढ़ाया जाता है। दीवाली का पहला दीप ठाकुरबारी में ही जलता है। जन्म, शादी और जनेऊ के अवसर पर अन्न-वस्त्र की पहली भेंट ठाकुरजी के नाम की जाती है। ठाकुरबारी के ब्राह्मण-साधु व्रत-कथाओं के दिन घर-घर घूमकर कथावाचन करते हैं। लोगों के खलिहान में जब फसल की दवनी[10] होकर अनाज की 'ढेरी' तैयार हो जाती है, तब ठाकुरजी के नाम 'अगउम[11]' निकालकर ही लोग अनाज अपने घर ले जाते हैं।

ठाकुरबारी के साथ अधिकांश लोगों का संबंध बहुत ही घनिष्ठ[12] है—मन और तन दोनों स्तर पर। कृषि-कार्य से अपना बचा हुआ समय वे ठाकुरबारी में ही बिताते हैं। ठाकुरबारी में साधु-संतो का प्रवचन[13] सुन और ठाकुरजी का दर्शन कर वे अपना यह जीवन सार्थक मानने लगते हैं। उन्हें यह महसूस होता है कि ठाकुरबारी में प्रवेश करते ही वे पवित्र हो जाते हैं। उनके पिछले सारे पाप अपने आप खत्म हो जाते हैं।

परिस्थितिवश इधर हरिहर काका ने ठाकुरबारी में जाना बंद कर दिया है। पहले वह अकसर ही ठाकुरबारी में जाते थे। मन बहलाने के लिए कभी-कभी मैं भी ठाकुरबारी में जाता हूँ। लेकिन वहाँ के साधु-संत मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाते। काम-धाम करने में उनकी कोई रुचि नहीं। ठाकुरजी को भोग लगाने के नाम पर दोनों जून हलवा-पूड़ी खाते हैं और आराम से पड़े रहते हैं। उन्हें अगर कुछ आता है तो सिर्फ़ बात बनाना आता है।

हरिहर काका चार भाई हैं। सबकी शादी हो चुकी है। हरिहर काका के अलावा सबके बाल-बच्चे हैं। बड़े और छोटे भाई के लड़के काफ़ी सयाने हो गए हैं। दो की शादियाँ हो गई हैं। उनमें से एक पढ़-लिखकर शहर के किसी दफ़्तर में क्लर्की करने लगा है। लेकिन हरिहर काका की अपनी देह से कोई औलाद नहीं। भाइयों में हरिहर काका का नंबर दूसरा है। औलाद के लिए उन्होंने दो शादियाँ कीं। लंबे समय तक प्रतीक्षारत रहे। लेकिन बिना बच्चा जने उनकी दोनों पत्नियाँ स्वर्ग सिधार गईं। लोगों ने तीसरी शादी करने की सलाह दी लेकिन अपनी गिरती हुई उम्र और धार्मिक संस्कारों की वजह से हरिहर काका ने इंकार कर दिया। वह इत्मीनान और प्रेम से अपने भाइयों के परिवार के साथ रहने लगे।

---

10. गेहूँ/धान निकालने की प्रक्रिया 11. प्रयोग में लाने से पहले देवता के लिए निकाला गया अंश 12. गहरा 13. भाषण/उपदेश

हरिहर काका के परिवार के पास कुल साठ बीघे खेत हैं। प्रत्येक भाई के हिस्से पंद्रह बीघे पड़ेंगे। कृषि-कार्य पर ये लोग निर्भर हैं। शायद इसीलिए अब तक संयुक्त परिवार के रूप में ही रहते आ रहे हैं।

हरिहर काका के तीनों भाइयों ने अपनी पत्नियों को यह सीख दी थी कि हरिहर काका की अच्छी तरह सेवा करें। समय पर उन्हें नाश्ता-खाना दें। किसी बात की तकलीफ़ न होने दें। कुछ दिनों तक वे हरिहर काका की खोज-खबर लेती रहीं। फिर उन्हें कौन पूछने वाला? 'ठहर-चौका' लगाकर पंखा झलते हुए अपने मर्दों को अच्छे-अच्छे व्यंजन खिलातीं। हरिहर काका के आगे तो बची-खुची चीज़ें आतीं। कभी-कभी तो हरिहर काका को रूखा-सूखा खाकर ही संतोष करना पड़ता।

अगर कभी हरिहर काका की तबीयत खराब हो जाती तो वह मुसीबत में पड़ जाते। इतने बड़े परिवार के रहते हुए भी कोई उन्हें पानी देने वाला तक नहीं। सभी अपने कामों में मशगूल[14]। बच्चे या तो पढ़-लिख रहे होते या धमाचौकड़ी मचाते। मर्द खेतों पर गए रहते। औरतें हाल पूछने भी नहीं आतीं। दालान के कमरे में अकेले पड़े हरिहर काका को स्वयं उठकर अपनी ज़रूरतों की पूर्ति करनी पड़ती। ऐसे वक्त अपनी पत्नियों को याद कर-करके हरिहर काका की आँखें भर आतीं। भाइयों के परिवार के प्रति मोहभंग की शुरुआत इन्हीं क्षणों में हुई थी। और फिर, एक दिन तो विस्फोट ही हो गया। उस दिन हरिहर काका की सहन-शक्ति जवाब दे गई। उस दिन शहर में क्लर्की करने वाले भतीजे का एक दोस्त गाँव आया था। उसी के आगमन के उपलक्ष्य में दो-तीन तरह की सब्ज़ी, बजके, चटनी, रायता आदि बने थे। बीमारी से उठे हरिहर काका का मन स्वादिष्ट भोजन के लिए बेचैन था। मन ही मन उन्होंने अपने भतीजे के दोस्त की सराहना की, जिसके बहाने उन्हें अच्छी चीज़ें खाने को मिलने वाली थीं। लेकिन बातें बिलकुल विपरीत हुईं। सबों ने खाना खा लिया, उनको कोई पूछने तक नहीं आया। उनके तीनों भाई खाना खाकर खलिहान में चले गए। दवनी हो रही थी। वे इस बात के प्रति निश्चिंत थे कि हरिहर काका को तो पहले ही खिला दिया गया होगा।

अंत में हरिहर काका ने स्वयं दालान के कमरे से निकल हवेली में प्रवेश किया। तब उनके छोटे भाई की पत्नी ने रूखा-सूखा खाना लाकर उनके सामने परोस दिया-भात, मट्ठा और अचार। बस, हरिहर काका के बदन में तो जैसे आग लग गई। उन्होंने थाली उठाकर बीच आँगन में फेंक दी। झन्न की तेज़ आवाज़ के साथ आँगन में थाली गिरी। भात बिखर गया। विभिन्न घरों में बैठी लड़कियाँ, बहुएँ सब एक ही साथ बाहर निकल आईं। हरिहर काका गरजते हुए हवेली से दालान की ओर चल पड़े-"समझ रही हो कि मुफ़्त में खिलाती हो, तो अपने मन से यह बात निकाल देना। मेरे हिस्से के खेत की पैदावार इसी घर में आती है। उसमें तो मैं दो-चार नौकर रख लूँ, आराम से खाऊँ, तब

14. व्यस्त

भी कमी नहीं होगी। मैं अनाथ और बेसहारा नहीं हूँ। मेरे धन पर तो तुम सब मौज कर रही हो। लेकिन अब मैं तुम सबों को बताऊँगा...आदि।"

हरिहर काका जिस वक्त यह सब बोल रहे थे, उस वक्त ठाकुरबारी के पुजारी जी उनके दालान पर ही विराजमान थे। वार्षिक हुमाध[15] के लिए वह घी और शकील लेने आए थे। लौटकर उन्होंने महंत जी को विस्तार के साथ सारी बात बताई। उनके कान खड़े हो गए। वह दिन उन्हें बहुत शुभ महसूस हुआ। उस दिन को उन्होंने ऐसे ही गुज़र जाने देना उचित नहीं समझा। तत्क्षण[16] टीका–तिलक लगा, कंधे पर रामनामी लिखी चादर डाल ठाकुरबारी से चल पड़े। संयोग अच्छा था। हरिहर के दालान तक नहीं जाना पड़ा। रास्ते में ही हरिहर मिल गए। गुस्से में घर से निकल वह खलिहान की ओर जा रहे थे। लेकिन महंत जी ने उन्हें खलिहान की ओर नहीं जाने दिया। अपने साथ ठाकुरबारी पर लेते आए। फिर एकांत कमरे में उन्हें बैठा, खूब प्रेम से समझाने लगे–"हरिहर! यहाँ कोई किसी का नहीं है। सब माया का बंधन है। तू तो धार्मिक प्रवृत्ति का आदमी है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम इस बंधन में कैसे फँस गए? ईश्वर में भक्ति लगाओ। उसके सिवाय कोई तुम्हारा अपना नहीं। पत्नी, बेटे, भाई–बंधु सब स्वार्थ के साथी हैं। जिस दिन उन्हें लगेगा कि तुमसे उनका स्वार्थ सधने वाला नहीं, उस दिन वे तुम्हें पूछेंगे तक नहीं। इसीलिए ज्ञानी, संत, महात्मा ईश्वर के सिवाय किसी और में प्रेम नहीं लगाते। ...तुम्हारे हिस्से में पंद्रह बीघे खेत हैं। उसी के चलते तुम्हारे भाई के परिवार तुम्हें पकड़े हुए हैं। तुम एक दिन कहकर तो देख लो कि अपना खेत उन्हें न देकर दूसरे को लिख दोगे, वह तुमसे बोलना बंद कर देंगे। खून का रिश्ता खत्म हो जाएगा। तुम्हारे भले के लिए मैं बहुत दिनों से सोच रहा था लेकिन संकोचवश नहीं कह रहा था। आज कह देता हूँ, तुम अपने हिस्से का खेत ठाकुरजी के नाम पर लिख दो। सीधे बैकुंठ को प्राप्त करोगे। तीनों लोक में तुम्हारी कीर्ति जगमगा उठेगी। जब तक चाँद–सूरज रहेंगे, तब तक लोग तुम्हें याद करेंगे। ठाकुरजी के नाम पर ज़मीन लिख देना, तुम्हारे जीवन का महादान होगा। साधु–संत तुम्हारे पाँव पखारेंगे। सभी तुम्हारा यशोगान करेंगे। तुम्हारा यह जीवन सार्थक हो जाएगा। अपनी शेष ज़िंदगी तुम इसी ठाकुरबारी में गुज़ारना, तुम्हें किसी चीज़ की कमी नहीं होगी। एक माँगोगे तो चार हाज़िर की जाएँगी। हम तुम्हें सिर–आँखों पर उठाकर रखेंगे। ठाकुरजी के साथ-साथ तुम्हारी आरती भी लगाएँगे। भाई का परिवार तुम्हारे लिए कुछ नहीं करेगा। पता नहीं पूर्वजन्म में तुमने कौन–सा पाप किया था कि तुम्हारी दोनों पत्नियाँ अकालमृत्यु को प्रप्त हुईं। तुमने औलाद का मुँह तक नहीं देखा। अपना यह जन्म तुम अकारथ[17] न जाने दो। ईश्वर को एक भर दोगे तो दस भर पाओगे। मैं अपने लिए तो तुमसे माँग नहीं रहा हूँ। तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों बन जाएँ, इसकी राह मैं तुम्हें बता रहा हूँ...।"

15. हवन में प्रयुक्त होने वाली सामग्री 16. उसी पल 17. बेकार

हरिहर देर तक महंत जी की बातें सुनते रहे। महंत जी की बातें उनके मन में बैठती जा रही थीं। ठीक ही तो कह रहे हैं महंत जी। कौन किसका है? पंद्रह बीघे खेत की फसल भाइयों के परिवार को देते हैं, तब तो कोई पूछता नहीं, अगर कुछ न दें तब क्या हालत होगी? उनके जीवन में तो यह स्थिति है, मरने के बाद कौन उन्हें याद करेगा? सीधे-सीधे उनके खेत हड़प जाएँगे। ठाकुरजी के नाम लिख देंगे तो पुश्तों तक लोग उन्हें याद करेंगे। अब तक के जीवन में तो ईश्वर के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। अंतिम समय तो यह बड़ा पुण्य कमा लें। लेकिन यह सोचते हुए भी हरिहर काका का मुँह खुल नहीं रहा था। भाई का परिवार तो अपना ही होता है। उनको न देकर ठाकुरबारी में दे देना उनके साथ धोखा और विश्वासघात होगा...।

अपनी बात समाप्त कर महंत जी प्रतिक्रिया जानने के लिए हरिहर की ओर देखने लगे। उन्होंने मुँह से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन उनके चेहरे के परिवर्तित भाव महंत जी की अनुभवी आँखों से छिपे न रह सके। अपनी सफलता पर महंत जी को बहुत खुशी हुई। उन्होंने सही जगह वार किया है। इसके बाद उसी वक्त ठाकुरबारी के दो सेवकों को बुलाकर आदेश दिया कि एक साफ़-सुथरे कमरे में पलंग पर बिस्तरा लगाकर उनके आराम का इंतज़ाम करें। फिर तो महंत जी के कहने में जितना समय लगा था, उससे कम समय में ही, सेवकों ने हरिहर काका के मना करने के बावजूद उन्हें एक सुंदर कमरे में पलंग पर जा लिटाया। और महंत जी! उन्होंने पुजारी जी को यह समझा दिया कि हरिहर के लिए विशेष रूप से भोजन की व्यवस्था करें। हरिहर काका को महंत जी एक विशेष उद्देश्य से ले गए थे, इसीलिए ठाकुरबारी में चहल-पहल शुरू हो गई।

इधर शाम को हरिहर काका के भाई जब खलिहान से लौटे तब उन्हें इस दुर्घटना का पता चला। पहले तो अपनी पत्नियों पर वे खूब बरसे, फिर एक जगह बैठकर चिंतामग्न हो गए। हालाँकि गाँव के किसी व्यक्ति ने भी उनसे कुछ नहीं कहा था। महंत जी ने हरिहर काका को क्या-क्या समझाया है, इसकी भी जानकारी उन्हें नहीं थी। लेकिन इसके बावजूद उनका मन शंकालु और बेचैन हो गया। दरअसल, बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं, जिनकी जानकारी बिना बताए ही लोगों को मिल जाती है।

शाम गहराते-गहराते हरिहर काका के तीनों भाई ठाकुरबारी पहुँचे। उन्होंने हरिहर काका को वापस घर चलने के लिए कहा। इससे पहले कि हरिहर काका कुछ कहते, महंत जी बीच में आ गए–"आज हरिहर को यहीं रहने दो...बीमारी से उठा है। इसका मन अशांत है। ईश्वर के दरबार में रहेगा तो शांति मिलेगी...।"

लेकिन उनके भाई उन्हें घर ले चलने के लिए ज़िद करने लगे। इस पर ठाकुरबारी के साधु-संत उन्हें समझाने लगे। वहाँ उपस्थित गाँव के लोगों ने भी कहा कि एक रात ठाकुरबारी में रह जाएँगे तो क्या हो जाएगा? अंततः भाइयों को निराश हो वहाँ से लौटना पड़ा।

रात में हरिहर काका को भोग लगाने के लिए जो मिष्टान्न और व्यंजन मिले, वैसे उन्होंने कभी नहीं खाए थे। घी टपकते मालपुए, रस बुनिया, लड्डू, छेने की तरकारी, दही, खीर...। पुजारी जी ने स्वयं अपने हाथों से खाना परोसा था। पास में बैठे महंत जी धर्म-चर्चा से मन में शांति पहुँचा रहे थे। एक ही रात में ठाकुरबारी में जो सुख-शांति और संतोष पाया, वह अपने अब तक के जीवन में उन्होंने नहीं पाया था।

इधर तीनों भाई रात-भर सो नहीं सके। भावी आशंका उनके मन को मथती रही। पंद्रह बीघे खेत! इस गाँव की उपजाऊ ज़मीन! दो लाख से अधिक की संपत्ति! अगर हाथ से निकल गई तो फिर वह कहीं के न रहेंगे।

सुबह तड़के ही तीनों भाई पुनः ठाकुरबारी पहुँचे। हरिहर काका के पाँव पकड़ रोने लगे। अपनी पत्नियों की गलती के लिए माफ़ी माँगी तथा उन्हें दंड देने की बात कही। साथ ही खून के रिश्ते की माया फैलाई। हरिहर काका का दिल पसीज गया। वह पुनः वापस घर लौट आए।

लेकिन यह क्या? इस बार अपने घर पर जो बदलाव उन्होंने लक्ष्य किया, उसने उन्हें सुखद आश्चर्य में डाल दिया। घर के छोटे-बड़े सब उन्हें सिर-आँखों पर उठाने को तैयार। भाइयों की पत्नियों ने उनके पैर पर माथा रख गलती के लिए क्षमा-याचना की। फिर उनकी आवभगत और जो खातिर शुरू हुई, वैसी खातिर किसी के यहाँ मेहमान आने पर भी नहीं होती होगी। उनकी रुचि और इच्छा के मुताबिक दोनों जून खाना-नाश्ता तैयार। पाँच महिलाएँ उनकी सेवा में मुस्तैद[18]—तीन भाइयों की पत्नियाँ और दो उनकी बहुएँ। हरिहर काका आराम से दालान में पड़े रहते। जिस किसी चीज़ की इच्छा होती, आवाज़ लगाते ही हाज़िर। वे समझ गए थे कि यह सब महंत जी के चलते ही हो रहा है, इसलिए महंत जी के प्रति उनके मन में आदर और श्रद्धा के भाव निरंतर बढ़ते ही जा रहे थे।

बहुत बार ऐसा होता है कि बिना किसी के कुछ बताए गाँव के लोग असली तथ्य से स्वयं वाकिफ़ हो जाते हैं। हरिहर काका की इस घटना के साथ ऐसा ही हुआ। दरअसल लोगों की ज़ुबान से घटनाओं की ज़ुबान ज़्यादा पैनी और असरदार होती है। घटनाएँ स्वयं ही बहुत कुछ कह देती हैं, लोगों के कहने की ज़रूरत नहीं रहती। न तो गाँव के लोगों से महंत जी ने ही कुछ कहा था और न हरिहर काका के भाइयों ने ही। इसके बावजूद गाँव के लोग सच्चाई से अवगत हो गए थे। फिर तो गाँव की बैठकों में बातों का जो सिलसिला चल निकला उसका कहीं कोई अंत नहीं। हर जगह उन्हीं का प्रसंग शुरू। कुछ लोग कहते कि हरिहर को अपनी ज़मीन ठाकुरजी के नाम लिख देनी चाहिए। इससे उत्तम और कुछ नहीं। इससे कीर्ति भी अचल बनी रहती है। इसके विपरीत कुछ लोगों

18. तैयार/कमर कसकर तैयार रहना

की मान्यता यह थी कि भाई का परिवार तो अपना ही होता है। अपनी जायदाद उन्हें न देना उनके साथ अन्याय करना होगा। खून के रिश्ते के बीच दीवार बनानी होगी।

जितने मुँह, उतनी बातें। ऐसा ज़बरदस्त मसला पहले कभी नहीं मिला था, इसीलिए लोग मौन होना नहीं चाहते थे। अपने-अपने तरीके से समाधान ढूँढ़ रहे थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि कुछ घटित हो। हालाँकि इसी क्रम में बातें गर्माहट-भरी भी होने लगी थीं। लोग प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दो वर्गों में बँटने लगे थे। कई बैठकों में दोनों वर्गों के बीच आपस में तू-तू, मैं-मैं भी होने लगी थी। एक वर्ग के लोग चाहते थे कि हरिहर अपने हिस्से की ज़मीन ठाकुरजी के नाम लिख दें। तब यह ठाकुरबारी न सिर्फ़ इलाके की ही सबसे बड़ी ठाकुरबारी होगी, बल्कि पूरे राज्य में इसका मुकाबला कोई दूसरी ठाकुरबारी नहीं कर सकेगी। इस वर्ग के लोग धार्मिक संस्कारों के लोग हैं। साथ ही किसी न किसी रूप में ठाकुरबारी से जुड़े हैं। असल में सुबह-शाम जब ठाकुरजी को भोग लगाया जाता है, तब साधु-संतों के साथ गाँव के कुछ पेटू और चटोर किस्म के लोग प्रसाद पाने के लिए वहाँ जुट जाते हैं। ये लोग इसी वर्ग के हिमायती हैं। दूसरे वर्ग में गाँव के प्रगतिशील विचारों वाले लोग तथा वैसे किसान हैं, जिनके यहाँ हरिहर जैसे औरत-मर्द पल रहे होते हैं। गाँव का वातावरण तनावपूर्ण हो गया था और लोग कुछ घटित होने की प्रतीक्षा करने लगे थे।

इधर भावी आशंकाओं को मद्देनज़र रखते हुए हरिहर काका के भाई उनसे यह निवेदन करने लगे थे कि अपनी ज़मीन वे उन्हें लिख दें। उनके सिवाय उनका और अपना है ही कौन? इस विषय पर हरिहर काका ने एकांत में मुझसे काफ़ी देर तक बात की। अंततः हम इस निष्कर्ष[19] पर पहुँचे कि जीते-जी अपनी जायदाद का स्वामी किसी और को बनाना ठीक नहीं होगा। चाहे वह अपना भाई या मंदिर का महंत ही क्यों न हो? हमें अपने गाँव और इलाके के वे कुछ लोग याद आए, जिन्होंने अपनी ज़िंदगी में ही अपनी जायदाद अपने उत्तराधिकारियों या किसी अन्य को लिख दी थी, लेकिन इसके बाद उनका जीवन कुत्ते का जीवन हो गया। कोई उन्हें पूछने वाला नहीं रहा। हरिहर काका बिलकुल अनपढ़ व्यक्ति हैं, फिर भी इस बदलाव को उन्होंने समझ लिया और यह निश्चय किया कि जीते-जी किसी को ज़मीन नहीं लिखेंगे। अपने भाइयों को समझा दिया, मर जाऊँगा तो अपने आप मेरी ज़मीन तुम्हें मिल जाएगी। ज़मीन लेकर तो जाऊँगा नहीं। इसीलिए लिखवाने की क्या ज़रूरत?

उधर महंत जी भी हरिहर काका की टोह में रहने लगे। जहाँ कहीं एकांत पाते, कह उठते—"विलंब न करो हरिहर। शुभ काम में देर नहीं करते। चलकर ठाकुरजी के नाम ज़मीन बय[20] कर दो। फिर पूरी ज़िंदगी ठाकुरबारी में राज करो। मरोगे तो तुम्हारी आत्मा को ले जाने के लिए स्वर्ग से विमान आएगा। देवलोक को प्राप्त करोगे...।"

19. परिणाम 20. वसीयत

लेकिन हरिहर काका न 'हाँ' कहते और न 'ना'। 'ना' कहकर वे महंत जी को दुखी करना नहीं चाहते थे क्योंकि भाई के परिवार से जो सुख-सुविधाएँ उन्हें मिल रही थीं, वे महंत जी की कृपा से ही। और 'हाँ' तो उन्हें कहना है नहीं, क्योंकि अपनी ज़िंदगी में अपनी ज़मीन उन्हें किसी को नहीं लिखनी। इस मुद्दे पर वे जागरूक हो गए थे।

पर बीतते समय के अनुसार महंत जी की चिंताएँ बढ़ती जा रही थीं। जाल में फँसी चिड़िया पकड़ से बाहर हो गई थी, महंत जी इस बात को सह नहीं पा रहे थे। महंत जी को लग रहा था कि हरिहर धर्म-संकट में पड़ गया है। एक ओर वह चाहता है कि ठाकुरजी को लिख दूँ, किंतु दूसरी ओर भाई के परिवार के माया-मोह में बँध जाता है। इस स्थिति में हरिहर का अपहरण कर ज़बरदस्ती उससे लिखवाने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं। बाद में हरिहर स्वयं राजी हो जाएगा।

महंत जी लड़ाकू और दबंग प्रकृति के आदमी हैं। अपनी योजना को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए वह जी-जान से जुट गए। हालाँकि यह सब गोपनीयता का निर्वाह करते हुए ही वह कर रहे थे। हरिहर काका के भाइयों को इसकी भनक तक नहीं थी।

बात अभी हाल की ही है। आधी रात के आस-पास ठाकुरबारी के साधु-संत और उनके पक्षधर भाला, गंड़ासा और बंदूक से लैस एकाएक हरिहर काका के दालान पर आ धमके। हरिहर काका के भाई इस अप्रत्याशित[21] हमले के लिए तैयार नहीं थे। इससे पहले कि वे जवाबी कार्रवाई करें और गुहार लगाकर अपने लोगों को जुटाएँ, तब तक आक्रमणकारी उनको पीठ पर लादकर चंपत हो गए।

गाँव में किसी ने ऐसी घटना नहीं देखी थी, न सुनी ही थी। सारा गाँव जाग गया। शुभचिंतक तो उनके यहाँ जुटने लगे, लेकिन अन्य लोग अपने दालान और मकान की छतों पर जमा होकर आहट लेने और बातचीत करने लगे।

हरिहर काका के भाई लोगों के साथ उन्हें ढूँढ़ने निकले। उन्हें लगा कि यह महंत का काम है। वे मय दल-बल ठाकुरबारी जा पहुँचे। वहाँ खामोशी और शांति नज़र आई। रोज़ की भाँति ठाकुरबारी का मुख्य फाटक बंद था। वातावरण में रात का सन्नाटा और सूनापन व्याप्त मिला। उन्हें लगा, यह काम महंत का नहीं, बाहर के डाकुओं का है। वे तो हरजाने की मोटी रकम लेकर ही हरिहर काका को मुक्त करेंगे।

खोज में निकले लोग किसी दूसरी दिशा की ओर प्रस्थान करते कि इसी समय ठाकुरबारी के अंदर से बातचीत करने की सम्मिलित, किंतु धीमी आवाज़ सुनाई पड़ी। सबके कान खड़े हो गए। उन्हें यकीन हो गया कि हरिहर काका इसी में हैं। अब क्या सोचना? वे ठाकुरबारी का फाटक पीटने लगे। इसी समय

21. आकस्मिक

ठाकुरबारी की छत से रोड़े और पत्थर उनके ऊपर गिरने लगे। वे तितर-बितर होने लगे। अपने हथियार सँभाले। लेकिन हथियार सँभालने से पहले ही ठाकुरबारी के कमरों की खिड़कियों से फायरिंग शुरू हो गई। एक नौजवान के पैर में गोली लग गई। वह गिर गया। उसके गिरते ही हरिहर काका के भाइयों के पक्षधर भाग चले। सिर्फ़ वे तीनों भाई बचे रह गए। अपने तीनों के बूते इस युद्ध को जीतना उन्हें संभव नहीं जान पड़ा। इसीलिए वे कस्बे के पुलिस थाने की ओर दौड़ पड़े।

इधर ठाकुरबारी के भीतर महंत और उनके कुछ चंद विश्वासी साधु सादे और लिखे कागज़ों पर अनपढ़ हरिहर काका के अँगूठे के निशान जबरन ले रहे थे। हरिहर काका तो महंत के इस व्यवहार से जैसे आसमान से ज़मीन में आ गए थे। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि महंत जी इस रूप में भी आएँगे। जिस महंत को वह आदरणीय एवं श्रद्धेय समझते थे, वह महंत अब उन्हें घृणित, दुराचारी और पापी नज़र आने लगा था। अब वह उस महंत की सूरत भी देखना नहीं चाहते थे। अब अपने भाइयों का परिवार महंत की तुलना में उन्हें ज़्यादा पवित्र, नेक और अच्छा लगने लगा था। हरिहर काका ठाकुरबारी से अपने घर पहुँचने के लिए बेचैन थे। लेकिन लोग उन्हें पकड़े हुए थे और महंत जी उन्हें समझा रहे थे–"तुम्हारे भले के लिए ही यह सब किया गया हरिहर। अभी तुम्हें लगेगा कि हम लोगों ने तुम्हारे साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती की, लेकिन बाद में तुम समझ जाओगे कि जिस धर्म-संकट में तुम पड़े थे, उससे उबारने के लिए यही एकमात्र रास्ता था...!"

एक ओर ठाकुरबारी के भीतर जबरन अँगूठे का निशान लेने और पकड़कर समझाने का कार्य चल रहा था तो दूसरी ओर हरिहर काका के तीनों भाई सुबह होने से पहले ही पुलिस की जीप के साथ ठाकुरबारी आ पहुँचे। जीप से तीनों भाई, एक दरोगा और पुलिस के आठ जवान उतरे। पुलिस इंचार्ज ने ठाकुरबारी के फाटक पर आवाज़ लगाई। दस्तक दी। लेकिन अंदर से कोई जवाब नहीं। अब पुलिस के जवानों ने ठाकुरबारी के चारों तरफ़ घेरा डालना शुरू किया। ठाकुरबारी अगर छोटी रहती तो पुलिस के जवान आसानी से उसे घेर लेते, लेकिन विशालकाय ठाकुरबारी को पुलिस के सीमित जवान घेर सकने में असमर्थ साबित हो रहे थे। फिर भी जितना संभव हो सका, उस रूप में उन्होंने घेरा डाल दिया और अपना-अपना मोर्चा सँभाल सुबह की प्रतीक्षा करने लगे।

हरिहर काका के भाइयों ने सोचा था कि जब वे पुलिस के साथ ठाकुरबारी पहुँचेंगे तो ठाकुरबारी के भीतर से हमले होंगे और साधु-संत रँगे हाथों पकड़ लिए जाएँगे। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। ठाकुरबारी के अंदर से एक रोड़ा भी बाहर नहीं आया। शायद पुलिस को आते हुए उन्होंने देख लिया था।

सुबह होने में अभी कुछ देर थी, इसलिए पुलिस इंचार्ज रह-रहकर ठाकुरबारी का फाटक खोलने तथा साधु-संतों को आत्मसमर्पण करने के लिए आवाज़ लगा रहे थे। साथ

ही पुलिस वर्ग की ओर से हवाई फ़ायर भी किए जा रहे थे, लेकिन ठाकुरबारी की ओर से कोई जवाब नहीं आ रहा था।

सुबह तड़के एक वृद्ध साधु ने ठाकुरबारी का फाटक खोल दिया। उस साधु की उम्र अस्सी वर्ष से अधिक की होगी। वह लाठी के सहारे काँपते हुए खड़ा था। पुलिस इंचार्ज ने उस वृद्ध साधु के पास पहुँच हरिहर काका तथा ठाकुरबारी के महंत, पुजारी एवं अन्य साधुओं के बारे में पूछा। लेकिन उसने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया। पुलिस इंचार्ज ने कई बार उससे पूछा। डाँट लगाई, धमकियाँ दीं, लेकिन हर बार एक ही वाक्य कहता, "मुझे कुछ मालूम नहीं।" ऐसे वक्त पुलिस के लोग मार-पीट का सहारा लेकर भी बात उगलवाते हैं; लेकिन उस साधु की वय[22] देखकर पुलिस इंचार्ज को महटिया[23] जाना पड़ा।

पुलिस इंचार्ज के नेतृत्व में पुलिस के जवान ठाकुरबारी की तलाशी लेने लगे। लेकिन न तो ठाकुरबारी के नीचे के कमरों में ही कोई पाया गया और न छत के कमरों में ही। पुलिस के जवानों ने खूब छान-बीन की, उस वृद्ध साधु के अलावा कोई दूसरा ठाकुरबारी में नहीं मिला।

हरिहर काका के भाई चिंता, परेशानी और दुखद आश्चर्य से घिर गए। ठाकुरबारी के महंत और साधु-संत हरिहर काका को लेकर कहाँ भाग गए? अब क्या होगा? काफ़ी पैसे खर्च कर पुलिस को लाए थे। पुलिस के साथ आने के बाद वह अंदर ही अंदर गर्व महसूस कर रहे थे। उन्हें लग रहा था कि अब भाई को वे आसानी से घर ले जाएँगे तथा साधु-संतों को जेल भिजवा देंगे। लेकिन दोनों में से एक भी नहीं हुआ।

ठाकुरबारी के जो कमरे खुले थे, उनकी तलाशी पहले ली गई थी। बाद में जिन कमरों की चिटकिनी बंद थी, उन्हें भी खोलकर देखा गया था। एक कमरे के बाहर बड़ा-सा ताला लटक रहा था। पुलिस और हरिहर काका के भाई सब वहीं एकत्र हो गए। उस कमरे की कुंजी की माँग वृद्ध साधु से की गई तो उसने साफ़ कह दिया, "मेरे पास नहीं।"

जब उससे पूछा गया, "इस कमरे में क्या है?" तब उसने जवाब दिया, "अनाज है।"

पुलिस इंचार्ज अभी यह सोच ही रहे थे कि इस कमरे का ताला तोड़कर देखा जाए या छोड़ दिया जाए कि अचानक उस कमरे के दरवाज़े को भीतर से किसी ने धक्का देना शुरू किया।

पुलिस के जवान सावधान हो गए।

ताला तोड़कर कमरे का दरवाज़ा खोला गया। कमरे के भीतर हरिहर काका जिस स्थिति में मिले, उसे देखकर उनके भाइयों का खून खौल उठा। उस वक्त अगर महंत, पुजारी या अन्य नौजवान साधु उन्हें नज़र आ जाते तो वे जीते-जी उन्हें नहीं छोड़ते।

---

22. उम्र 23. टाल जाना/नज़रअंदाज़ कर देना

हरिहर काका के हाथ और पाँव तो बाँध ही दिए गए थे, उनके मुँह में कपड़ा ठूँसकर बाँध दिया गया था। हरिहर काका ज़मीन पर लुढ़कते हुए दरवाज़े तक आए थे और पैर से दरवाज़े पर धक्का लगाया था।

काका को बंधनमुक्त किया गया, मुँह से कपड़े निकाले गए। हरिहर काका ने ठाकुरबारी के महंत, पुजारी और साधुओं की काली करतूतों का परदाफ़ाश करना शुरू किया कि वह साधु नहीं, डाकू, हत्यारे और कसाई हैं, कि उन्हें इस रूप में कमरे में बंद कर गुप्त दरवाज़े से भाग गए, कि उन्होंने कई सादे और लिखे हुए कागज़ों पर जबरन उनके अँगूठे के निशान लिए...आदि।

हरिहर काका ने देर तक अपने बयान दर्ज कराए। उनके शब्द-शब्द से साधुओं के प्रति नफ़रत और घृणा व्यक्त हो रही थी। जीवन में कभी किसी के खिलाफ़ उन्होंने इतना नहीं कहा होगा जितना ठाकुरबारी के महंत, पुजारी और साधुओं के बारे में कहा।

अब हरिहर काका पुनः अपने भाइयों के परिवार के साथ रहने लगे थे। इस बार उन्हें दालान पर नहीं, घर के अंदर रखा गया था—किसी बहुमूल्य वस्तु की तरह सँजोकर, छिपाकर। उनकी सुरक्षा के लिए रिश्ते-नाते में जितने 'सूरमा' थे, सबको बुला लिया गया था। हथियार जुटा लिए गए थे। चौबीसों घंटे पहरे दिए जाने लगे थे। अगर किसी आवश्यक कार्यवश काका घर से गाँव में निकलते तो चार-पाँच की संख्या में हथियारों से लैस लोग उनके आगे-पीछे चलते रहते। रात में चारों तरफ़ से घेरकर सोते। भाइयों ने ड्यूटी बाँट ली थी। आधे लोग सोते तो आधे लोग जागकर पहरा देते रहते।

इधर ठाकुरबारी का दृश्य भी बदल गया था। एक से एक खूँखार लोग ठाकुरबारी में आ गए थे। उन्हें देखकर ही डर लगता था। गाँव के बच्चों ने तो ठाकुरबारी की ओर जाना ही बंद कर दिया। हरिहर काका को लेकर गाँव प्रारंभ से ही दो वर्गों में बँट गया था। इस नयी घटना को लेकर दोनों तरफ़ से प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की जाने लगी थीं।

और अब हरिहर काका एक सीधे-सादे और भोले किसान की अपेक्षा चतुर और ज्ञानी हो चले थे। वह महसूस करने लगे थे कि उनके भाई अचानक उनको जो आदर-सम्मान और सुरक्षा प्रदान करने लगे हैं, उसकी वजह उन लोगों के साथ उनका सगे भाई का संबंध नहीं, बल्कि उनकी जायदाद है, अन्यथा वे उनको पूछते तक नहीं। इसी गाँव में जायदादहीन भाई को कौन पूछता है? हरिहर काका को अब सब नज़र आने लगा था! महंत की चिकनी-चुपड़ी बातों के भीतर की सच्चाई भी अब वह जान गए थे। ठाकुरजी के नाम पर वह अपना और अपने जैसे साधुओं का पेट पालता है। उसे धर्म और परमार्थ से कोई मतलब नहीं। निजी स्वार्थ के लिए साधु होने और पूजा-पाठ करने का ढोंग रचाया है। साधु के बाने में महंत, पुजारी और उनके अन्य सहयोगी लोभी-लालची और कुकर्मी हैं। छल, बल, कल[24], किसी भी तरह धन अर्जित कर बिना परिश्रम किए आराम से रहना चाहते हैं। अपने घृणित इरादों को छिपाने के लिए ठाकुरबारी को इन्होंने माध्यम बनाया है। एक ऐसा माध्यम जिस पर अविश्वास न किया जा सके। इसीलिए हरिहर काका ने मन ही मन तय कर लिया कि अब महंत को वे अपने पास फटकने तक नहीं देंगे। साथ ही अपनी ज़िंदगी में अपनी जायदाद भाइयों को भी नहीं लिखेंगे, अन्यथा फिर वह दूध की मक्खी हो जाएँगे। लोग निकालकर फेंक देंगे। कोई उन्हें पूछेगा तक नहीं। बुढ़ापे का दुख बिताए नहीं बीतेगा!

24. युक्ति/बुद्धि

लेकिन हरिहर काका सोच कुछ और रहे थे और वातावरण कुछ दूसरा ही तैयार हो रहा था। ठाकुरबारी से जिस दिन उन्हें वापस लाया गया था, उसी दिन से उनके भाई और रिश्ते-नाते के लोग समझाने लगे थे कि विधिवत अपनी जायदाद वे अपने भतीजों के नाम लिख दें। वह जब तक ऐसा नहीं करेंगे तब तक महंत की गिद्ध-दृष्टि उनके ऊपर लगी रहेगी। सिर पर मँडरा रहे तूफ़ान से मुक्ति पाने के लिए उनके समक्ष अब यही एकमात्र रास्ता है...।

सुबह, दोपहर, शाम, रात गए तक यही चर्चा। लेकिन हरिहर काका साफ़ नकार जाते। कहते-"मेरे बाद तो मेरी जायदाद इस परिवार को स्वत: मिल जाएगी इसीलिए लिखने का कोई अर्थ नहीं। महंत ने अँगूठे के जो जबरन निशान लिए हैं, उसके खिलाफ़ मुकदमा हमने किया ही है...।"

भाई जब समझाते-समझाते हार गए तब उन्होंने डाँटना और दबाव देना शुरू किया। लेकिन काका इस रास्ते भी राजी नहीं हुए। स्पष्ट कह दिया कि अपनी ज़िंदगी में वह नहीं लिखेंगे। बस, एक रात उनके भाइयों ने वही रूप धारण कर लिया, जो रूप महंत और उनके सहयोगियों ने धारण किया था। हरिहर काका को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उनके वही अपने सगे भाई, जो उनकी सेवा और सुरक्षा में तैयार रहते थे, उन्हें अपना अभिन्न समझते थे, जो उनकी नींद ही सोते और जागते थे, हथियार लेकर उनके सामने खड़े थे। कह रहे थे-"सीधे मन से कागज़ों पर जहाँ-जहाँ ज़रूरत है, अँगूठे के निशान बनाते चलो अन्यथा मारकर यहीं घर के अंदर गाड़ देंगे। गाँव के लोगों को कोई सूचना तक नहीं मिलने पाएगी।"

अगर पहले वाली बात होती तो हरिहर काका डर जाते। अज्ञान की स्थिति में ही मनुष्य मृत्यु से डरते हैं। ज्ञान होने के बाद तो आदमी आवश्यकता पड़ने पर मृत्यु को वरण करने के लिए तैयार हो जाता है। हरिहर काका ने सोच लिया कि ये सब एक ही बार उन्हें मार दें, वह ठीक होगा; लेकिन अपनी ज़मीन लिखकर रमेसर की विधवा की तरह शेष ज़िंदगी वे घुट-घुटकर मरें, यह ठीक नहीं होगा। रमेसर की विधवा को बहला-फुसलाकर उसके हिस्से की ज़मीन रमेसर के भाइयों ने लिखवा ली। शुरू में तो उसका खूब आदर-मान किया, लेकिन बुढ़ापे में उसे दोनों जून खाना देते उन्हें अखरने लगा। अंत में तो उसकी वह दुर्गति हुई कि गाँव के लोग देखकर सिहर जाते। हरिहर काका को लगता है कि अगर रमेसर की विधवा ने अपनी ज़मीन नहीं लिखी होती तो अंत समय तक लोग उसके पाँव पखारते होते।

हरिहर काका गुस्से में खड़े हो गए और गरजते हुए कहा, "मैं अकेला हूँ...तुम सब इतने हो! ठीक है, मुझे मार दो...मैं मर जाऊँगा, लेकिन जीते-जी एक धूर ज़मीन भी तुम्हें नहीं लिखूँगा...तुम सब ठाकुरबारी के महंत-पुजारी से तनिक भी कम नहीं...!"

"देखते हैं, कैसे नहीं लिखोगे? लिखना तो तुम्हें है ही, चाहे हँस के लिखो या रो के...।"

हरिहर काका के साथ उनके भाइयों की हाथापाई शुरू हो गई। हरिहर काका अब उस घर से निकलकर बाहर गाँव में भाग जाना चाहते थे, लेकिन उनके भाइयों ने उन्हें मज़बूती से पकड़ लिया था। प्रतिकार करने पर अब वे प्रहार भी करने लगे थे। अकेले हरिहर कई लोगों से जूझ सकने में असमर्थ थे, फलस्वरूप उन्होंने अपनी रक्षा के लिए खूब ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। अब भाइयों को चेत आया कि मुँह तो उन्हें पहले ही बंद कर देना चाहिए था। उन्होंने तत्क्षण उन्हें पटक उनके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। लेकिन ऐसा करने से पहले ही काका की आवाज़ गाँव में पहुँच गई थी। टोला-पड़ोस के लोग दालान में जुटने लगे थे। ठाकुरबारी के पक्षधरों के माध्यम से तत्काल यह खबर महंत जी तक भी चली गई थी। लेकिन वहाँ उपस्थित हरिहर काका के परिवार और रिश्ते-नाते के लोग, गाँव के लोगों को समझा देते कि अपने परिवार का निजी मामला है, इससे दूसरों को क्या मतलब? लेकिन महंत जी ने वह तत्परता और फुरती दिखाई जो काका के भाइयों ने भी नहीं दिखाई थी। वह पुलिस की जीप के साथ आ धमके।

पुलिस आने के बाद निजी मामले का सवाल खत्म हो गया। घर-तलाशी शुरू हुई। फिर हरिहर काका को उससे भी बदतर हालत में बरामद किया गया जिस हालत में ठाकुरबारी से उन्हें बरामद किया गया था।

बंधनमुक्त होने और पुलिस की सुरक्षा पाने के बाद उन्होंने बताया कि उनके भाइयों ने उनके साथ बहुत जुल्म-अत्याचार किया है, कि जबरन अनेक कागज़ों पर उनके अँगूठे के निशान लिए हैं, कि उन्हें खूब मारा-पीटा है, कि उनकी कोई भी दुर्गति बाकी नहीं छोड़ी है, कि अगर और थोड़ी देर तक पुलिस नहीं आती तो वह उन्हें जान से मार देते...।

हरिहर काका के पीठ, माथे और पाँवों पर कई जगह ज़ख्म के निशान उभर आए थे। वह बहुत घबराए हुए-से लग रहे थे। काँप रहे थे। अचानक गिरकर बेहोश हो गए। मुँह पर पानी छींटकर उन्हें होश में लाया गया। भाई और भतीजे तो पुलिस आते ही चंपत हो गए थे। पुलिस की पकड़ में रिश्ते के दो व्यक्ति आए। रिश्ते के शेष लोग भी फरार हो गए थे...।

हरिहर काका के साथ घटी घटनाओं में यह अब तक की सबसे अंतिम घटना है। इस घटना के बाद काका अपने परिवार से एकदम अलग रहने लगे हैं। उनकी सुरक्षा के लिए राइफलधारी पुलिस के चार जवान मिले हैं। हालाँकि इसके लिए उनके भाइयों और महंत की ओर से काफ़ी प्रयास किए गए हैं। असल में भाइयों को चिंता थी कि हरिहर अकेले रहने लगेंगे, तब ठाकुरबारी के महंत अपने लोगों के साथ आकर पुनः उन्हें ले भागेंगे। और यही चिंता महंत जी को भी थी कि हरिहर को अकेला और असुरक्षित पा उनके भाई पुनः उन्हें धर दबोचेंगे। इसीलिए जब हरिहर काका ने अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस की माँग की

तब नेपथ्य में रहकर ही उनके भाइयों और महंत जी ने पैरवी लगा और पैसे खर्च कर उन्हें पूरी सहायता पहुँचाई। यह उनकी सहायता का ही परिणाम है कि एक व्यक्ति की सुरक्षा के लिए गाँव में पुलिस के चार जवान तैनात कर दिए गए हैं।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, फिलहाल हरिहर काका पुलिस की सुरक्षा में रह ज़रूर रहे हैं, लेकिन वास्तविक सुरक्षा ठाकुरबारी और अपने भाइयों की ओर से ही मिल रही है। ठाकुरबारी के साधु-संत और काका के भाई इस बात के प्रति पूरी तरह सतर्क हैं कि उनमें से कोई या गाँव का कोई अन्य हरिहर काका के साथ जोर-ज़बरदस्ती न करने पाए। साथ ही अपना सद्भाव और मधुर व्यवहार प्रकट कर पुनः उनका ध्यान अपनी ओर खींच लेने के लिए दोनों दल प्रयत्नशील हैं।

गाँव में एक नेता जी हैं, वह न तो कोई नौकरी करते हैं और न खेती-गृहस्थी, फिर भी बारहों महीने मौज़ उड़ाते रहते हैं। राजनीति की जादुई छड़ी उनके पास है। उनका ध्यान हरिहर काका की ओर जाता है। वह तत्काल गाँव के कुछ विशिष्ट लोगों के साथ उनके पास पहुँचते हैं और यह प्रस्ताव रखते हैं कि उनकी ज़मीन में 'हरिहर उच्च विद्यालय' नाम से एक हाई स्कूल खोला जाए। इससे उनका नाम अमर हो जाएगा। उनकी ज़मीन का सही उपयोग होगा और गाँव के विकास के लिए एक स्कूल मिल जाएगा। लेकिन हरिहर काका के ऊपर तो अब कोई भी दूसरा रंग चढ़ने वाला नहीं था। नेता जी भी निराश होकर लौट आते हैं।

इन दिनों गाँव की चर्चाओं के केंद्र हैं हरिहर काका। आँगन, खेत, खलिहान, अलाव, बगीचे, बरगद हर जगह उनकी ही चर्चा। उनकी घटना की तरह विचारणीय और चर्चनीय कोई दूसरी घटना नहीं। गाँव में आए दिन छोटी-बड़ी घटनाएँ घटती रहती हैं, लेकिन काका के प्रसंग के सामने उनका कोई अस्तित्व नहीं। गाँव में जहाँ कहीं और जिन लोगों के बीच हरिहर काका की चर्चा छिड़ती है तो फिर उसका कोई अंत नहीं। लोग तरह-तरह की संभावनाएँ व्यक्त करते हैं—"राम जाने क्या होगा? दोनों ओर के लोगों ने अँगूठे के निशान ले लिए हैं। लेकिन हरिहर ने अपना बयान दर्ज कराया है कि वे दोनों लोगों में से किसी को अपनी ज़मीन का उत्तराधिकारी नहीं मानते हैं। दोनों ओर के लोगों ने जबरन उनके अँगूठे के निशान लिए हैं। इस स्थिति में उनके बाद उनकी जायदाद का हकदार कौन होगा?"

लोगों के बीच बहस छिड़ जाती है। उत्तराधिकारी के कानून पर जो जितना जानता है, उससे दस गुना अधिक उगल देता है। फिर भी कोई समाधान नहीं निकलता। रहस्य खत्म नहीं होता, आशंकाएँ बनी ही रहती हैं। लेकिन लोग आशंकाओं को नज़रअंदाज़ कर अपनी पक्षधरता शुरू कर देते हैं कि उत्तराधिकार ठाकुरबारी को मिलता तो ठीक रहता। दूसरी ओर के लोग कहते कि हरिहर के भाइयों को मिलता तो ज़्यादा अच्छा रहता।

ठाकुरबारी के साधु-संत और काका के भाइयों ने कब क्या कहा, यह खबर बिजली की तरह एक ही बार समूचे गाँव में फैल जाती है। खबर झूठी है कि सच्ची, इस पर कोई ध्यान नहीं देता। जिसे खबर हाथ लगती है, वह नमक-मिर्च मिला उसे चटकाकर आगे बढ़ा देता है।

एक खबर आती है कि महंत जी और हरिहर काका के भाई इस बात के लिए अफ़सोस कर रहे हैं कि अँगूठे के निशान लेने के बाद उन्होंने हरिहर को खत्म क्यों नहीं कर दिया। बात ही आगे नहीं बढ़ती।

एक दूसरी खबर आती है कि हरिहर मरेंगे तो उन्हें अग्नि प्रदान करने के लिए ठाकुरबारी के साधु-संतों और काका के भाइयों के बीच काफ़ी लड़ाई होगी। दोनों ओर से अग्नि प्रदान करने का निश्चय हो चुका है। इस संदर्भ में उनकी लाश हस्तगत करने के लिए खून की नदी बहेगी।

एक तीसरी खबर आती है कि हरिहर काका की मृत्यु के बाद उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा करने के लिए उनके भाई अभी से तैयारी कर रहे हैं। इलाके के मशहूर डाकू बुटन सिंह से उन लोगों ने बातचीत पक्की कर ली है। हरिहर के पंद्रह बीघे खेत में से पाँच बीघे बुटन लेगा और दखल करा देगा। इससे पहले भी इस तरह के दो-तीन मामले बुटन ने निपटाए हैं। पूरे इलाके में उसके नाम की तूती बोलती है।

एक चौथी खबर आती है कि महंत जी ने निर्णय ले लिया है, हरिहर की मृत्यु के बाद देश के कोने-कोने से साधुओं और नागाओं को वह बुलाएँगे।

रहस्यात्मक और भयावनी खबरों से गाँव का आकाश आच्छादित[25] हो गया है। दिन-प्रतिदिन आतंक का माहौल गहराता जा रहा है। सबके मन में यह बात है कि हरिहर कोई अमृत पीकर तो आए हैं नहीं। एक न एक दिन उन्हें मरना ही है। फिर एक भयंकर तूफ़ान की चपेट में यह गाँव आ जाएगा। उस वक्त क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। यह कोई छोटी लड़ाई नहीं, एक बड़ी लड़ाई है। जाने-अनजाने पूरा गाँव इसकी चपेट में आएगा ही...। इसीलिए लोगों के अंदर भय भी है और प्रतीक्षा भी। एक ऐसी प्रतीक्षा जिसे झुठलाकर भी उसके आगमन को टाला नहीं जा सकता।

और हरिहर काका! वह तो बिलकुल मौन हो अपनी ज़िंदगी के शेष दिन काट रहे हैं। एक नौकर रख लिया है, वही उन्हें बनाता-खिलाता है। उनके हिस्से की ज़मीन में जितनी फसल होती है, उससे अगर वह चाहते तो मौज की ज़िंदगी बिता सकते थे। लेकिन वह तो गूँगेपन का शिकार हो गए हैं। कोई बात कहो, कुछ पूछो, कोई जवाब नहीं। खुली आँखों से बराबर आकाश को निहारा करते हैं। सारे गाँव के लोग उनके बारे में बहुत कुछ कहते-सुनते हैं, लेकिन उनके पास अब कहने के लिए कोई बात नहीं।

25. ढका हुआ

पुलिस के जवान हरिहर काका के खर्चे पर ही खूब मौज-मस्ती से रह रहे हैं। जिसका धन वह रहे उपास, खाने वाले करें विलास। अब तक जो नहीं खाया था, दोनों जून उसका भोग लगा रहे हैं।

बोध-प्रश्न

1. कथावाचक और हरिहर काका के बीच क्या संबंध है और इसके क्या कारण हैं?
2. हरिहर काका को मंहत और अपने भाई एक ही श्रेणी के क्यों लगने लगे?
3. ठाकुरबारी के प्रति गाँव वालों के मन में अपार श्रद्धा के जो भाव हैं उससे उनकी किस मनोवृत्ति का पता चलता है?
4. अनपढ़ होते हुए भी हरिहर काका दुनिया की बेहतर समझ रखते हैं? कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
5. हरिहर काका को जबरन उठा ले जाने वाले कौन थे? उन्होंने उनके साथ कैसा बर्ताव किया?
6. हरिहर काका के मामले में गाँव वालों की क्या राय थी और उसके क्या कारण थे?
7. कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि लेखक ने यह क्यों कहा, "अज्ञान की स्थिति में ही मनुष्य मृत्यु से डरते हैं। ज्ञान होने के बाद तो आदमी आवश्यकता पड़ने पर मृत्यु को वरण करने के लिए तैयार हो जाता है।"
8. समाज में रिश्तों की क्या अहमियत है? इस विषय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
9. यदि आपके आसपास हरिहर काका जैसी हालत में कोई हो तो आप उसकी किस प्रकार मदद करेंगे?
10. हरिहर काका के गाँव में यदि मीडिया की पहुँच होती तो उनकी क्या स्थिति होती? अपने शब्दों में लिखिए।

1058CH02

सपनों के-से दिन

मेरे साथ खेलने वाले सभी बच्चों का हाल एक-सा होता। नंगे पाँव, फटी-मैली सी कच्छी और टूटे बटनों वाले कई जगह से फटे कुर्ते और बिखरे बाल। जब लकड़ी के ढेर पर चढ़कर खेलते नीचे को भागते तो गिरकर कई तो जाने कहाँ-कहाँ चोट खा लेते और पहले ही फटे-पुराने कुर्ते तार-तार हो जाते। धूल भरे, कई जगह से छिले पाँव, पिंडलियाँ या लहू के ऊपर जमी रेत-मिट्टी से लथपथ घुटने लेकर जाते तो सभी की माँ-बहनें उन पर तरस खाने की जगह और पिटाई करतीं। कइयों के बाप बड़े गुस्सैल थे। पीटने लगते तो यह ध्यान भी न रखते कि छोटे बच्चे के नाक-मुँह से लहू बहने लगा है या उसके कहाँ चोट लगी है। परंतु इतनी बुरी पिटाई होने पर भी दूसरे दिन फिर खेलने चले आते। (यह बात तब ठीक से समझ आई जब स्कूल अध्यापक बनने के लिए एक ट्रेनिंग[1] करने गया और वहाँ बाल-मनोविज्ञान का विषय पढ़ा। ऐसी बातों के बारे में तभी जान पाया कि बच्चों को खेलना क्यों इतना अच्छा लगता है कि बुरी तरह पिटाई होने पर भी फिर खेलने चले आते हैं।)

मेरे साथ खेलने वाले अधिकतर साथी हमारे जैसे ही परिवारों के हुआ करते। सारे मुहल्ले में बहुत परिवार तो, हमारी तरह आसपास के गाँवों से ही आकर बसे थे। दो-तीन घर, साथ की उजड़ी-सी गली में रहने वाले लोगों के थे। हमारी सभी की आदतें भी कुछ मिलती-जुलती थीं। उनमें से अधिक तो स्कूल जाते ही न थे, जो कभी गए भी, पढ़ाई में रुचि न होने के कारण किसी दिन बस्ता तालाब में फेंक आए और फिर स्कूल गए ही नहीं, न ही माँ-बाप ने ज़बरदस्ती भेजा। यहाँ तक कि परचूनिये, आढ़तीये भी अपने बच्चों को स्कूल भेजना ज़रूरी न समझते। कभी किसी स्कूल अध्यापक से बात होती तो कहते—मास्टर जी हमने इसे क्या तहसीलदार लगवाना है। थोड़ा बड़ा हो जाए तो पंडत घनश्याम दास से लंडे[2] पढ़वाकर दुकान पर बहियाँ[3] लिखने लगा लेंगे। पंडत छह-आठ महीने में लंडे और मुनीमी का सभी काम सिखा देगा। वहाँ तो अभी तक अलिफ-बे जीम-च भी सीख नहीं पाया।

1. प्रशिक्षण 2. हिसाब-किताब लिखने की पंजाबी प्राचीन लिपि 3. खाता (दुकान के हिसाब-किताब का ब्यौरा जिसमें लिखा जाए)

हमारे आधे से अधिक साथी राजस्थान या हरियाणा से आकर मंडी में व्यापार या दुकानदारी करने आए परिवारों से थे। जब बहुत छोटे थे तो उनकी बोली कम समझ पाते। उनके कुछ शब्द सुनकर हमें हँसी आने लगती। परंतु खेलते तो सभी एक-दूसरे की बात खूब अच्छी तरह समझ लेते।

पता भी नहीं चला कि लोकोक्ति अनुसार 'एह खेडण[4] दे दिन चार' कैसे, कब बीत गए। (हममें से कोई भी ऐसा न था जो स्कूल के कमरे में बैठकर पढ़ने को 'कैद' न समझता हो।) कुछ अपने माँ-बाप के साथ जैसा भी था, काम कराने लगे।

बचपन में घास अधिक हरी और फूलों की सुगंध अधिक मनमोहक लगती है। यह शब्द शायद आधी शती पहले किसी पुस्तक में पढ़े थे, परंतु आज तक याद हैं। याद रहने का कारण यही है कि यह वाक्य बचपन की भावनाओं, सोच-समझ के अनुकूल होगा। परंतु स्कूल के अंदर जाने से रास्ते के दोनों ओर जो अलियार के बड़े ढंग से कटे-छाँटे झाड़ उगे थे (जिन्हें हम डंडियाँ कहा करते) उनके नीम के पत्तों जैसे पत्तों की महक आज तक भी आँख मूँदकर महसूस कर सकता हूँ। उन दिनों स्कूल की छोटी क्यारियों में फूल भी कई तरह के उगाए जाते थे जिनमें गुलाब, गेंदा और मोतिया की दूध-सी सफ़ेद कलियाँ भी हुआ करतीं। ये कलियाँ इतनी सुंदर और खुशबूदार होती थीं कि हम चंदू चपड़ासी[5] से आँख बचाकर कभी-कभार एक-दो तोड़ लिया करते। उनकी बहुत तेज़ सुगंध आज भी महसूस कर पाता हूँ, परंतु यह याद नहीं कि उन्हें तोड़कर, कुछ देर सूँघकर फिर क्या किया करते। (शायद जेब में डाल लेते, माँ उसे धोने के समय निकालकर बाहर फेंक देती या हम ही, स्कूल से बाहर आते उन्हें बकरी के मेमनों की भाँति 'चर' जाया करते)।

जब अगली श्रेणी में दाखिल होते तो एक ओर तो कुछ बड़े, सयाने होने के एहसास से उत्साहित भी होते, परंतु दूसरी ओर नयी, पुरानी कापियों-किताबों से जाने कैसी बास आती कि उन्हीं मास्टरों के डर से काँपने लगते जो पिछली श्रेणी में पढ़ा चुके होते।

तब स्कूल में, शुरू साल में एक-डेढ़ महीना पढ़ाई हुआ करती, फिर डेढ़-दो महीने की छुट्टियाँ शुरू हो जाया करतीं। अब तक जो बात अच्छी तरह याद है वह छुट्टियों के पहले और आखिरी दिनों का फ़र्क था। पहले दो-तीन सप्ताह तो खूब खेल-कूद हुआ करती। हर साल ही माँ के साथ ननिहाल चले जाते। वहाँ नानी खूब दूध-दही, मक्खन खिलाती, बहुत प्यार करती। छोटा सा पिछड़ा गाँव था परंतु तालाब हमारी मंडी के तालाब जितना ही बड़ा था। दोपहर तक तो उस तालाब में नहाते फिर नानी से जो जी में आता माँगकर खाने लगते। नानी हमारे बोलने के ढंग या कम खाने के कारण बहुत खुश होती। अपने पोतों को हमारी तरह बोलने और खाने-पीने को कहती। जिस साल ननिहाल न जा पाते, उस साल भी अपने घर से थोड़ा बाहर तालाब पर चले जाते। कपड़े उतार पानी में कूद जाते और कुछ समय बाद, भागते हुए एक रेतीले टीले पर जाकर, रेत के ऊपर लेटने लगते। गीले शरीर

4. खेलने के 5. चपरासी

को गरम रेत से खूब लथपथ कर उसी तरह भागते, किसी ऊँची जगह से तालाब में छलाँग लगा देते। रेत को गंदले पानी से साफ़ कर फिर टीले की ओर भाग जाते। याद नहीं कि ऐसा, पाँच-दस बार करते या पंद्रह-बीस बार। कई बार तालाब में कूदकर ऐसे हाथ-पाँव हिलाने लगते जैसे बहुत अच्छे तैराक हों। परंतु एक-दो को छोड़, मेरे किसी साथी को तैरना नहीं आता था। कुछ तो हाथ-पाँव हिलाते हुए गहरे पानी में चले जाते तो दूसरे उन्हें बाहर आने के लिए किसी भैंस के सींग या दुम पकड़कर बाहर आने की सलाह देते। उन्हें ढाँढ़स बँधाते। कूदते समय मुँह में गंदला पानी भर जाता तो बुरी तरह खाँसते। कई बार ऐसा लगता कि साँस रुकने लगी है परंतु हाय-हाय करते किसी न किसी तरह तालाब के किनारे पहुँच जाते।

फिर छुट्टियाँ बीतने लगतीं तो दिन गिनने लगते। प्रत्येक दिन डर बढ़ता चला जाता। खेल-कूद और तालाब में नहाना भी भूलने लगता। मास्टरों ने जो छुट्टियों में करने के लिए काम दिया होता उसका हिसाब लगाने लगते। जैसे हिसाब के मास्टर जी दो सौ से कम सवाल कभी न बताते। मन में हिसाब लगाते कि यदि दस सवाल रोज़ निकाले तो बीस दिन मे पूरे हो जाएँगे। जब ऐसा सोचना शुरू करते तो छुट्टियों का एक महीना बाकी हुआ करता। एक-एक दिन गिनते दस दिन खेल-कूद में और बीत जाते। स्कूल की पिटाई[6] का डर और बढ़ने लगता। परंतु डर भुलाने के लिए सोचते कि दस की क्या बात, सवाल तो पंद्रह भी आसानी से रोज़ निकाले जा सकते हैं। जब ऐसा हिसाब लगाने लगते तो छुट्टियाँ कम होते-होते जैसे भागने लगतीं। दिन बहुत छोटे लगने लगते। ऐसा महसूस होता जैसे सूरज भागकर दोपहरी में ही छिप जाता हो। जैसे-जैसे दिन 'छोटे' होने लगते स्कूल का भय बढ़ने लगता। हमारे कितने ही सहपाठी ऐसे भी होते जो छुट्टियों का काम करने की बजाय मास्टरों की पिटाई अधिक 'सस्ता सौदा' समझते। हम जो पिटाई से बहुत डरा करते, उन 'बहादुरों' की भाँति ही सोचने लगते। ऐसे समय हमारा सबसे बड़ा 'नेता' ओमा हुआ करता।

हम सभी उसके बारे में सोचते कि हमारे में उस जैसा कौन था। कभी भी उस जैसा दूसरा लड़का नहीं ढूँढ़ पाते थे। उसकी बातें, गालियाँ, मार-पिटाई का ढंग तो अलग था ही, उसकी शक्ल-सूरत भी सबसे अलग थी। हाँड़ी जितना बड़ा सिर, उसके ठिगने चार बालिश्त के शरीर पर ऐसा लगता जैसे बिल्ली के बच्चे के माथे पर तरबूज रखा हो। इतने बड़े सिर में नारियल-की-सी आँखों वाला बंदरिया के बच्चे जैसा चेहरा और भी अजीब लगता। लड़ाई वह हाथ-पाँव नहीं, सिर से किया करता। जब साँड़ की भाँति फुँकारता, सिर झुकाकर किसी के पेट या छाती में मार देता तो उससे दुगुने-तिगुने शरीर वाले लड़के भी पीड़ा से चिल्लाने लगते। हमें डर लगता कि किसी की छाती की पसली ही न तोड़ डाले। उसके सिर की टक्कर का नाम हमने 'रेल-बम्बा' रखा हुआ था—रेल के (कोयले से चलने वाले) इंजन की भाँति बड़ा और भयंकर ही तो था।

6. आजकल स्कूलों में विद्यार्थियों को पीटना मना है

हमारा स्कूल बहुत छोटा था–केवल छोटे-छोटे नौ कमरे थे जो अंग्रेज़ी के अक्षर एच (H) की भाँति बने थे। दाईं ओर पहला कमरा हेडमास्टर श्री मदनमोहन शर्मा जी का था जिसके दरवाज़े के आगे हमेशा चिक लटकी रहती। स्कूल की प्रेयर (प्रार्थना) के समय वह बाहर आते और सीधी कतारों में कद के अनुसार खड़े लड़कों को देख उनका गोरा चेहरा खिल उठता। सारे अध्यापक, लड़कों की तरह ही कतार बाँधकर उनके पीछे खड़े होते। केवल मास्टर प्रीतम चंद 'पीटी' लड़कों की कतारों के पीछे खड़े-खड़े यह देखते थे कि कौन सा लड़का कतार में ठीक नहीं खड़ा। उनकी घुड़की तथा ठुड्डों के भय से हम सभी कतार के पहले और आखिरी लड़के का ध्यान रखते, सीधे कतार में बने रहने का प्रयत्न करते। सीधी कतार के साथ-साथ हमें यह ध्यान भी रखना होता था कि आगे पीछे खड़े लड़कों के बीच की दूरी भी एक सी हो। सभी लड़के उस 'पीटी' से बहुत डरते थे क्योंकि उन जितना सख्त अध्यापक न कभी किसी ने देखा, न सुना था। यदि कोई लड़का अपना सिर भी इधर-उधर हिला लेता या पाँव से दूसरी पिंडली खुजलाने लगता तो वह उसकी ओर बाघ की तरह झपट पड़ते और 'खाल खींचने' के मुहावरे को प्रत्यक्ष करके दिखा देते।

परंतु हेडमास्टर शर्मा जी उसके बिलकुल उलट स्वभाव के थे। वह पाँचवीं और आठवीं श्रेणी को अंग्रेज़ी स्वयं पढ़ाया करते थे। हमारे में से किसी को भी याद न था कि पाँचवीं श्रेणी में कभी भी उन्हें, किसी गलती के कारण किसी की 'चमड़ी उधेड़ते' देखा या सुना हो। (चमड़ी उधेड़ना हमारे लिए बिलकुल ऐसा शब्द था जैसे हमारे 'सरकारी मिडिल स्कूल' का नाम।) अधिक से अधिक वह गुस्से में बहुत जल्दी-जल्दी आँखें झपकते, अपने लंबे हाथ की उल्टी उँगलियों से एक 'चपत' हमारी गाल पर मार देते तो मेरे जैसे सबसे कमज़ोर शरीर वाले भी सिर झुकाकर मुँह नीचा किए हँस देते। वह चपत तो जैसे हमें भाई भीखे की नमकीन पापड़ी जैसी मज़ेदार लगती जो तब पैसे की शायद दो आ जाया करतीं।

परंतु तब भी स्कूल हमारे लिए ऐसी जगह न थी जहाँ खुशी से भागे जाएँ। पहली कच्ची श्रेणी से लेकर चौथी श्रेणी तक, केवल पाँच-सात लड़कों को छोड़ हम सभी रोते चिल्लाते ही स्कूल जाया करते।

परंतु कभी-कभी ऐसी सभी स्थितियों के रहते स्कूल अच्छा भी लगने लगता। जब स्काउटिंग का अभ्यास करवाते समय पीटी साहब नीली-पीली झंडियाँ हाथों में पकड़ाकर वन टू थ्री कहते, झंडियाँ ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ करवाते तो हवा में लहराती और

फड़फड़ाती झंडियों के साथ खाकी वर्दियों तथा गले में दोरंगे रूमाल लटकाए अभ्यास किया करते। हम कोई गलती न करते तो वह अपनी चमकीली आँखें हलके से झपकाते कहते–शाबाश। वैल बिगिन अगेन–वन, टू, थ्री, थ्री, टू, वन! उनकी एक शाबाश ऐसे लगने लगती जैसे हमने किसी फ़ौज के सभी तमगे जीत लिए हों। कभी यही एक शाबाश, सभी मास्टरों की ओर से, हमारी सभी कापियों पर साल भर की लिखी 'गुड्डों' (गुड का बहुवचन) से अधिक मूल्यवान लगने लगती। कभी ऐसा भी लगता कि कई साल की सख्त मेहनत से प्राप्त की पढ़ाई से भी पीटी साहिब के डिसिप्लिन में रहकर प्राप्त की 'गुडविल' बहुत बड़ी थी। परंतु यह भी एहसास रहता कि जैसे गुरुद्वारे का भाई जी कथा करते समय बताया करता कि सतिगुर[7] के भय से ही प्रेम जागता है, ऐसे ही पीटी साहब के प्रति हमारी प्रेम की भावना जग जाती। (यह ऐसा भी है कि आपको रोज़ फटकारने वाला कोई 'अपना' यदि साल भर के बाद एक बार 'शाबाश' कह दे तो यह चमत्कार-सा लगने लगता है–हमारी दशा भी कुछ ऐसी हुआ करती।)

हर वर्ष अगली श्रेणी में प्रवेश करते समय मुझे पुरानी पुस्तकें मिला करतीं। हमारे हेडमास्टर शर्मा जी एक लड़के को उसके घर जाकर पढ़ाया करते थे। वे धनाढ्य लोग थे। उनका लड़का मुझसे एक-दो साल बड़ा होने के कारण मेरे से एक श्रेणी आगे रहा। हर साल अप्रैल में जब पढ़ाई का नया साल आरंभ होता तो शर्मा जी उसकी एक साल पुरानी पुस्तकें ले आते। हमारे घर में किसी को भी पढ़ाई में दिलचस्पी न थी। यदि नयी किताबें लानी पड़तीं (जो तब एक-दो रुपये में आ जाया करतीं) तो शायद इसी बहाने पढ़ाई तीसरी-चौथी श्रेणी में ही छूट जाती। कोई सात साल स्कूल में रहा तो एक कारण पुरानी किताबें मिल जाना भी था। कापियों, पैंसिलों, होल्डर या स्याही-दवात में भी मुश्किल से एक-दो रुपये साल भर में खर्च हुआ करते। परंतु उस ज़माने में एक रुपया भी बहुत बड़ी 'रकम' हुआ करती थी। एक रुपये में एक सेर घी आया करता और दो रुपये की एक मन (चालीस सेर) गंदम। इसी कारण, खाते-पीते घरों के लड़के ही स्कूल जाया करते। हमारे दो परिवारों में मैं पहला लड़का था जो स्कूल जाने लगा था।

परंतु किसी भी नयी श्रेणी में जाने का ऐसा चाव कभी भी महसूस नहीं हुआ जिसका ज़िक्र कुछ लड़के किया करते। अजीब बात थी कि मुझे नयी कापियों और पुरानी पुस्तकों में से ऐसी गंध आने लगती कि मन बहुत उदास होने लगता था। इसका ठीक-ठीक कारण तो कभी समझ में नहीं आया परंतु जितनी भी मनोविज्ञान की जानकारी है, इस अरुचि का कारण यही समझ में आया कि आगे की श्रेणी की कुछ मुश्किल पढ़ाई और नए मास्टरों की मार-पीट का भय ही कहीं भीतर जमकर

7. सतगुरु

बैठ गया था। सभी तो नए न होते थे परंतु दो-तीन हर साल ही वह होते जोकि छोटी श्रेणी में नहीं पढ़ाते थे। कुछ ऐसी भी भावना थी कि अधिक अध्यापक एक साल में ऐसी अपेक्षा करने लगते कि जैसे हम 'हरफनमौला[8]' हो गए हों। यदि उनकी आशाओं पर पूरे नहीं हो पाते तो कुछ तो जैसे 'चमड़ी उधेड़ देने को तैयार रहते', इन्हीं कुछ कारणों से केवल किताबों-कापियों की गंध से ही नहीं, बाहर के बड़े गेट से दस-पंद्रह गज दूर स्कूल के कमरों तक रास्ते के दोनों ओर जो अलिआर के झाड़ उगे थे उनकी गंध भी मन उदास कर दिया करती।

परंतु स्कूल एक-दो कारणों से अच्छा भी लगने लगा था। मास्टर प्रीतमचंद जब हम स्काउटों को परेड करवाते तो लेफ्ट-राइट की आवाज़ या मुँह में ली ह्विसल से मार्च कराया करते। फिर राइट टर्न या लेफ्ट टर्न या अबाऊट टर्न कहने पर छोटे-छोटे बूटों की एड़ियों पर दाएँ-बाएँ या एकदम पीछे मुड़कर बूटों की ठक-ठक करते अकड़कर चलते तो लगता जैसे हम विद्यार्थी नहीं, बहुत महत्त्वपूर्ण 'आदमी' हों—फ़ौजी जवान।

दूसरे विश्व-युद्ध का समय था, परंतु हमारी नाभा रियासत का राजा अंग्रेज़ों ने 1923 में गिरफ़्तार कर लिया था और तमिलनाडु में कोडाएकेनाल में ही, जंग शुरू होने से पहले उसका देहांत हो गया था। उस राजा का बेटा, कहते थे अभी विलायत में पढ़ रहा था। इसलिए हमारे देसी रियासत में भी अंग्रेज़ की ही चलती थी फिर भी राजा के न रहते, अंग्रेज़ हमारी रियासत के गाँवों से 'जबरन[9]' भरती नहीं कर पाया था। लोगों को फ़ौज में भरती करने के लिए जब कुछ अफसर आते तो उनके साथ कुछ नौटंकी वाले भी हुआ करते। वे रात को खुले मैदान में शामियाने लगाकर लोगों को फ़ौज के सुख-आराम, बहादुरी के दृश्य दिखाकर आकर्षित किया करते। उनका एक गाना अभी भी याद है। कुछ मसखरे, अजीब सी वर्दियाँ पहने और अच्छे, बड़े फ़ौजी बूट पहने गाया करते—

भरती हो जा रे रंगरूट
भरती हो जा रे...
अठे[10] मिले सैं टूटे लीतर[11]
उठै[12] मिलैंदे बूट,
भरती हो जा रे,
हो जा रे रंगरूट।
　　अठे पहन सै फटे पुराणे
　　उठै मिलेंगे सूट

8. पारंगत/विद्वान/हर फन (विद्या) में माहिर 9. बलपूर्वक/ज़बरदस्ती 10. यहाँ 11. टूटे हुए पुराने खस्ताहाल जूते 12. वहाँ

भरती हो जा रे,
हो जा रे रंगरूट

इन्हीं बातों से आकर्षित हो कुछ नौजवान भरती के लिए तैयार हो जाया करते।

कभी-कभी हमें भी महसूस होता कि हम भी फ़ौजी जवानों से कम नहीं। धोबी की धुली वर्दी और पालिश किए बूट और जुराबों को पहने जब हम स्काउटिंग की परेड करते तो लगता हम फ़ौजी ही हैं।

मास्टर प्रीतमचंद को स्कूल के समय में कभी भी हमने मुसकराते या हँसते न देखा था। उनका ठिगना कद, दुबला-पतला परंतु गठीला शरीर, माता के दागों से भरा चेहरा और बाज-सी तेज़ आँखें, खाकी वर्दी, चमड़े के चौड़े पंजों वाले बूट—सभी कुछ ही भयभीत करने वाला हुआ करता। उनके बूटों की ऊँची एड़ियों के नीचे भी खुरियाँ लगी रहतीं, जैसे ताँगे के घोड़े के पैरों में लगी रहती हैं। अगले हिस्से में, पंजों के नीचे मोटे सिरों वाले कील ठुके होते। यदि वह सख्त जगह पर भी चलते तो खुरियों और कीलों के निशान वहाँ भी दिखाई देते। हम ध्यान से देखते, इतने बड़े और भारी-भारी बूट पहनने के बावजूद उनके टखनों में कहीं मोच तक नहीं आती थी। (उनको देखकर हम यदि घरवालों से बूटों की माँग करते तो माँ-बाप यही कहते कि टखने टेढ़े हो जाएँगे, सारी उमर सीधे न चल पाओगे।)

मास्टर प्रीतमचंद से हमारा डरना तो स्वाभाविक था, परंतु हम उनसे नफ़रत भी करते थे। कारण तो उसका मारपीट था। हम सभी को (जो मेरी उमर के हैं) वह दिन नहीं भूल पाया जिस दिन वह हमें चौथी श्रेणी में फ़ारसी पढ़ाने लगे थे। हमें उर्दू का तो तीसरी श्रेणी तक अच्छा अभ्यास हो गया था परंतु फ़ारसी तो अंग्रेज़ी से भी मुश्किल थी। अभी हमें पढ़ते एक सप्ताह भी न हुआ होगा कि प्रीतमचंद ने हमें एक शब्द-रूप याद करने को कहा और आदेश दिया कि कल इसी घंटी में ज़बानी सुनेंगे। हम सभी घर लौटकर, रात देर तक उसी शब्द-रूप को बार-बार याद करते रहे परंतु केवल दो-तीन ही लड़के थे जिन्हें आधी या कुछ अधिक शब्द-रूप याद हो पाया। दूसरे दिन बारी-बारी सबको सुनाने के लिए कहा तो एक भी लड़का न सुना पाया। तभी मास्टर जी गुर्राए—सभी कान पकड़ो।

हमने झुककर टाँगों के पीछे से बाँहें निकालकर कान पकड़े तो वह गुस्से से चीखे—पीठ ऊँची करो।

पीठ ऊँची करके कान पकड़ने से, तीन-चार मिनट में ही टाँगों में जलन होने लगती थी। मेरे जैसे कमज़ोर तो टाँगों के थकने से कान पकड़े हुए ही गिर पड़ते। जब तक मेरी और हरबंस की बारी आई तब तक हेडमास्टर शर्मा जी अपने दफ़्तर में आ चुके थे। जब हमें सजा दी जा रही थी तो उसके कुछ

समय पहले शर्मा जी, स्कूल की पूरब की ओर बने सरकारी हस्पताल में डाक्टर कपलाश से मिलने गए थे। वह दफ़्तर के सामने की ओर चले आए। आते ही जो कुछ उन्होंने देखा वह सहन नहीं कर पाए। शायद यह पहला अवसर था कि वह पीटी प्रीतमचंद की उस बर्बरता को सहन न कर पाए। बहुत उत्तेजित हो गए थे।

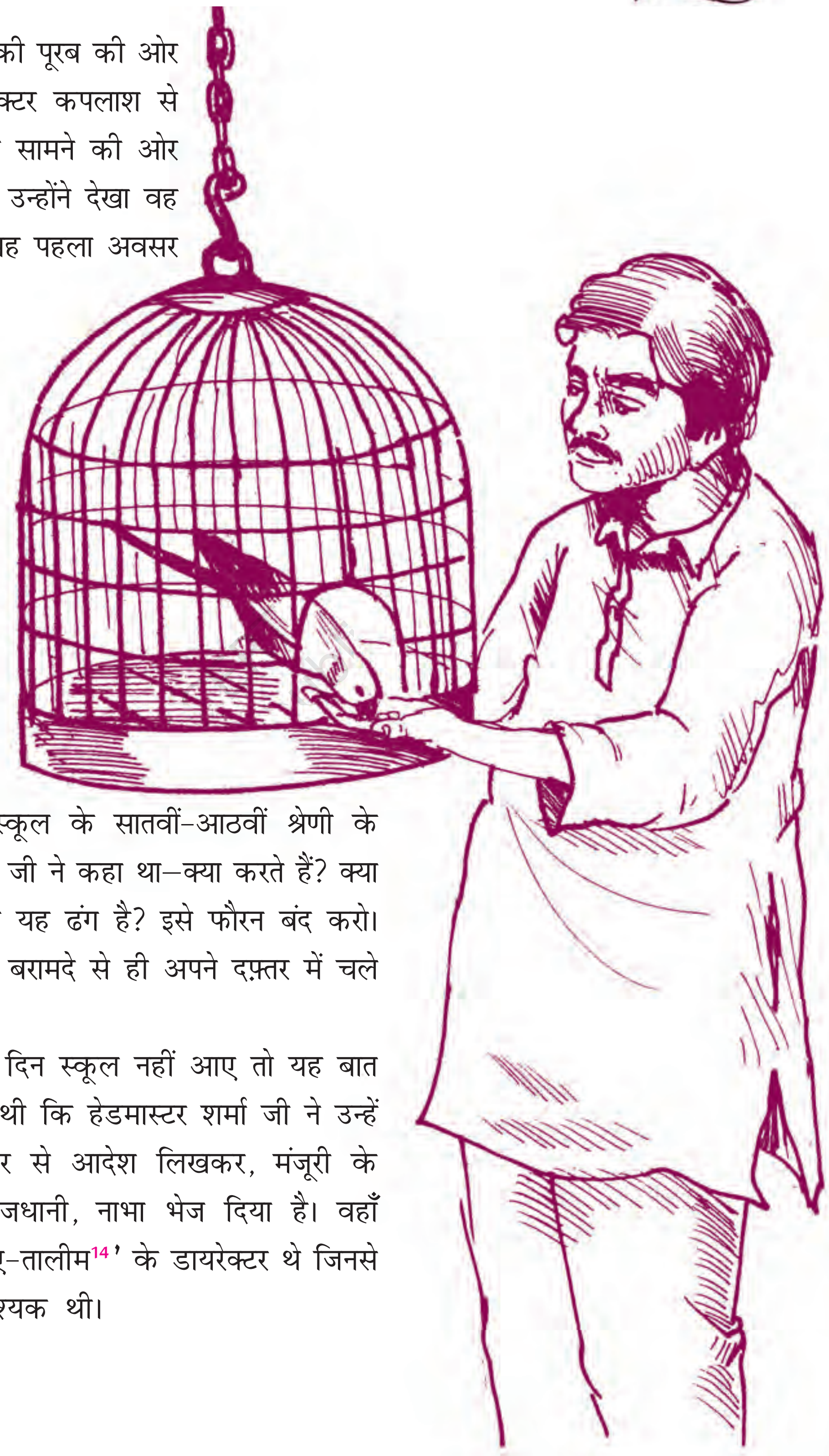

—ह्वाट आर यू डूईंग, इज इट दा वे टू पनिश दा स्टूडेंट्स आफ फोर्थ क्लास? स्टाप इट ऐट वन्स।

हमें तब अंग्रेज़ी नहीं आती थी, क्योंकि उस समय पाँचवीं श्रेणी से अंग्रेज़ी पढ़ानी शुरू की जाती थी। परंतु हमारे स्कूल के सातवीं-आठवीं श्रेणी के लड़कों ने बताया था कि शर्मा जी ने कहा था—क्या करते हैं? क्या चौथी श्रेणी को सजा देने का यह ढंग है? इसे फौरन बंद करो।

शर्मा जी गुस्से से काँपते बरामदे से ही अपने दफ़्तर में चले गए थे।

फिर जब प्रीतमचंद कई दिन स्कूल नहीं आए तो यह बात सभी मास्टरों की ज़ुबान पर थी कि हेडमास्टर शर्मा जी ने उन्हें मुअत्तल[13] करके अपनी ओर से आदेश लिखकर, मंज़ूरी के लिए हमारी रियासत की राजधानी, नाभा भेज दिया है। वहाँ हरजीलाल नाम के 'महकमाए-तालीम[14]' के डायरेक्टर थे जिनसे ऐसे आदेश की मंज़ूरी आवश्यक थी।

13. निलंबित 14. शिक्षा विभाग

उस दिन के बाद यह पता होते हुए भी कि पीटी प्रीतमचंद को जब तक नाभा से डायरेक्टर 'बहाल' नहीं करेंगे तब तक वह स्कूल में कदम नहीं रख सकते, जब भी फ़ारसी की घंटी बजती तो हमारी छाती धक्-धक् करती फटने को आती। परंतु जब तक शर्मा जी स्वयं या मास्टर नौहरिया राम जी कमरे में फ़ारसी पढ़ाने न आ जाते, हमारे चेहरे मुर्झाए रहते।

फिर कई सप्ताह तक पीटी मास्टर स्कूल नहीं आए। पता चला कि बाज़ार में एक दुकान के ऊपर उन्होंने जो छोटी-छोटी खिड़कियों वाला चौबारा किराए पर ले रखा था, वहीं आराम से रह रहे थे। कुछ सातवीं-आठवीं के विद्यार्थी हमें बताया करते कि उन्हें मुअत्तल होने की रत्ती भर भी चिंता नहीं थी। पहले की तरह ही आराम से पिंजरे में रखे दो तोतों को दिन में कई बार, भिगोकर रखे बादामों की गिरियों का छिलका उतारकर उन्हें खिलाते उनसे बातें करते रहते हैं। उनके वे तोते हमने भी कई बार देखे थे। (हम उन बड़े लड़कों के साथ उनके चौबारे में गए थे जो लड़के पीटी साहब के आदेश पर उनके घर का काम करने जाया करते) परंतु हमारे लिए यह चमत्कार ही था कि जो प्रीतमचंद बिल्ला मार-मारकर हमारी चमड़ी तक उधेड़ देते वह अपने तोतों से मीठी-मीठी बातें कैसे कर लेते थे? क्या तोतों को उनकी दहकती, भूरी आँखों से भय न लगता था।

हमारी समझ में ऐसी बातें तब नहीं आ पाती थीं, बस एक तरह इन्हें अलौकिक ही मानते थे।

बोध-प्रश्न

1. कोई भी भाषा आपसी व्यवहार में बाधा नहीं बनती—पाठ के किस अंश से यह सिद्ध होता है?
2. पीटी साहब की 'शाबाश' फ़ौज के तमगों-सी क्यों लगती थी? स्पष्ट कीजिए।
3. नयी श्रेणी में जाने और नयी कापियों और पुरानी किताबों से आती विशेष गंध से लेखक का बालमन क्यों उदास हो उठता था?
4. स्काउट परेड करते समय लेखक अपने को महत्त्वपूर्ण 'आदमी' फ़ौजी जवान क्यों समझने लगता था?
5. हेडमास्टर शर्मा जी ने पीटी साहब को क्यों मुअत्तल कर दिया?
6. लेखक के अनुसार उन्हें स्कूल खुशी से भागे जाने की जगह न लगने पर भी कब और क्यों उन्हें स्कूल जाना अच्छा लगने लगा?
7. लेखक अपने छात्र जीवन में स्कूल से छुट्टियों में मिले काम को पूरा करने के लिए क्या-क्या योजनाएँ बनाया करता था और उसे पूरा न कर पाने की स्थिति में किसकी भाँति 'बहादुर' बनने की कल्पना किया करता था?
8. पाठ में वर्णित घटनाओं के आधार पर पीटी सर की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

9. विद्यार्थियों को अनुशासन में रखने के लिए पाठ में अपनाई गई युक्तियों और वर्तमान में स्वीकृत मान्यताओं के संबंध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

10. बचपन की यादें मन को गुदगुदाने वाली होती हैं विशेषकर स्कूली दिनों की। अपने अब तक के स्कूली जीवन की खट्टी-मीठी यादों को लिखिए।

11. प्राय: अभिभावक बच्चों को खेल-कूद में ज़्यादा रुचि लेने पर रोकते हैं और समय बरबाद न करने की नसीहत देते हैं। बताइए–

    (क) खेल आपके लिए क्यों ज़रूरी हैं?

    (ख) आप कौन से ऐसे नियम-कायदों को अपनाएँगे जिससे अभिभावकों को आपके खेल पर आपत्ति न हो?

1058CH03

टोपी शुक्ला

इफ़्फ़न के बारे में कुछ जान लेना इसलिए ज़रूरी है कि इफ़्फ़न टोपी का पहला दोस्त था। इस इफ़्फ़न को टोपी ने सदा इफ्फन कहा। इफ़्फ़न ने इसका बुरा माना। परंतु वह इफ्फन पुकारने पर बोलता रहा। इसी बोलते रहने में उसकी बड़ाई थी। यह नामों का चक्कर भी अजीब होता है। उर्दू और हिंदी एक ही भाषा, हिंदवी के दो नाम हैं। परंतु आप खुद देख लीजिए कि नाम बदल जाने से कैसे-कैसे घपले हो रहे हैं। नाम कृष्ण हो तो उसे अवतार कहते हैं और मुहम्मद हो तो पैगंबर। नामों के चक्कर में पड़कर लोग यह भूल गए कि दोनों ही दूध देने वाले जानवर चराया करते थे। दोनों ही पशुपति, गोबरधन और ब्रज-कुमार थे। इसीलिए तो कहता हूँ कि टोपी के बिना इफ़्फ़न और इफ़्फ़न के बिना टोपी न केवल यह कि अधूरे हैं बल्कि बेमानी हैं। इसलिए इफ़्फ़न के घर चलना ज़रूरी है। यह देखना ज़रूरी है कि उसकी आत्मा के आँगन में कैसी हवाएँ चल रही हैं और परंपराओं[1] के पेड़ पर कैसे फल आ रहे हैं।

(2)

इफ़्फ़न की कहानी भी बहुत लंबी है। परंतु हम लोग टोपी की कहानी कह-सुन रहे हैं। इसीलिए मैं इफ़्फ़न की पूरी कहानी नहीं सुनाऊँगा बल्कि केवल उतनी ही सुनाऊँगा जितनी टोपी की कहानी के लिए ज़रूरी है।

मैंने इसे ज़रूरी जाना कि इफ़्फ़न के बारे में आपको कुछ बता दूँ क्योंकि इफ़्फ़न आपको इस कहानी में जगह-जगह दिखाई देगा। न टोपी इफ़्फ़न की परछाई है और न इफ़्फ़न टोपी की। ये दोनों दो आज़ाद व्यक्ति हैं। इन दोनों व्यक्तियों का डेवलपमेंट[2] एक-दूसरे से आज़ाद तौर पर हुआ। इन दोनों को दो तरह की घरेलू परंपराएँ मिलीं। इन दोनों ने जीवन के बारे में अलग-अलग सोचा। फिर भी इफ़्फ़न टोपी की कहानी का एक अटूट[3] हिस्सा है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इफ़्फ़न टोपी की कहानी का एक अटूट हिस्सा है।

---

1. प्रथा/प्रणाली जो बहुत दिनों से चली आ रही हो 2. विकास 3. न टूटने वाला/मज़बूत

मैं हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं यह बेवकूफ़ी क्यों करूँ! क्या मैं रोज़ अपने बड़े या छोटे भाई से यह कहता हूँ कि हम दोनों भाई-भाई हैं? यदि मैं नहीं कहता तो क्या आप कहते है? हिंदू-मुसलमान अगर भाई-भाई हैं तो कहने की ज़रूरत नहीं। यदि नहीं हैं तो कहने से क्या फ़र्क पड़ेगा। मुझे कोई चुनाव तो लड़ना नहीं है।

मैं तो एक कथाकार हूँ और एक कथा सुना रहा हूँ। मैं टोपी और इफ़्फ़न की बात कर रहा हूँ। ये इस कहानी के दो चरित्र हैं। एक का नाम बलभद्र नारायण शुक्ला है और दूसरे का नाम सय्यद जरगाम मुरतुज़ा। एक को टोपी कहा गया और दूसरे को इफ़्फ़न।

इफ़्फ़न के दादा और परदादा बहुत प्रसिद्ध मौलवी थे। काफ़िरों के देश में पैदा हुए। काफ़िरों के देश में मरे। परंतु वसीयत[4] करके मरे कि लाश करबला[5] ले जाई जाए। उनकी आत्मा ने इस देश में एक साँस तक न ली। उस खानदान में जो पहला हिंदुस्तानी बच्चा पैदा हुआ वह बढ़कर इफ़्फ़न का बाप हुआ।

जब इफ़्फ़न के पिता सय्यद मुरतुजा हुसैन मरे तो उन्होंने यह वसीयत नहीं की कि उनकी लाश करबला ले जाई जाए। वह एक हिंदुस्तानी कब्रिस्तान में दफ़न किए गए।

इफ़्फ़न की परदादी भी बड़ी नमाजी[6] बीबी थीं। करबला, नजफ़, खुरासान, काजमैन और जाने कहाँ की यात्रा कर आई थीं। परंतु जब कोई घर से जाने लगता तो वह दरवाज़े पर पानी का एक घड़ा ज़रूर रखवातीं और माश का सदका[7] भी ज़रूर उतरवातीं।

इफ़्फ़न की दादी भी नमाज़-रोज़े की पाबंद थीं परंतु जब इकलौते बेटे को चेचक[8] निकली तो वह चारपाई के पास एक टाँग पर खड़ी हुईं और बोलीं, "माता मोरे बच्चे को माफ़ करद्यो।" पूरब की रहने वाली थीं। नौ या दस बरस की थीं जब ब्याह कर लखनऊ आईं, परंतु जब तक ज़िंदा रहीं पूरबी[9] बोलती रहीं। लखनऊ की उर्दू ससुराली थी। वह तो मायके की भाषा को गले लगाए रहीं क्योंकि इस भाषा के सिवा इधर-उधर कोई ऐसा नहीं था जो उनके दिल की बात समझता। जब बेटे की शादी के दिन आए तो गाने-बजाने के लिए उनका दिल फड़का परंतु मौलवी के घर गाना-बजाना भला कैसे हो सकता था! बेचारी दिल मसोसकर रह गईं। हाँ इफ़्फ़न की छठी[10]... पर उन्होंने जी भरकर जश्न[11] मना लिया।

बात यह थी कि इफ़्फ़न अपने दादा के मरने के बाद पैदा हुआ था। मर्दों और औरतों के इस फ़र्क को ध्यान में रखना ज़रूरी है क्योंकि इस बात को ध्यान में रखे बगैर इफ़्फ़न की आत्मा का नाक-नक्शा[12] समझ में नहीं आ सकता।

---

4. लंबी यात्रा पर जाने से पूर्व या अपनी मृत्यु के बाद अपनी संपत्ति के प्रबंध, उपभोग आदि के विषय में लिखित इच्छा जो दर्ज कर दी गई हो 5. इस्लाम का एक पवित्र स्थान 6. नियमित रूप से नमाज़ पढ़ने वाला 7. एक टोटका 8. एक संक्रामक रोग जिसमें बुखार के साथ पूरे शरीर पर दाने निकल आते हैं, शीतला 9. पूरब की तरफ़ बोली जाने वाली भाषा 10. जन्म के छठे दिन का स्नान/पूजन/उत्सव 11. उत्सव/खुशी का जलसा 12. रूप-रंग

इफ़्फ़न की दादी किसी मौलवी की बेटी नहीं थीं बल्कि एक ज़मींदार की बेटी थीं। दूध-घी खाती हुई आई थीं परंतु लखनऊ आकर वह उस दही के लिए तरस गईं जो घी पिलाई हुई काली हाँडियों में असामियों के यहाँ से आया करता था। बस मायके जातीं तो लपड़-शपड़ जी भर के खा लेतीं। लखनऊ आते ही उन्हें फिर मौलविन बन जाना पड़ता। अपने मियाँ से उन्हें यही तो एक शिकायत थी कि वक्त देखें न मौका, बस मौलवी ही बने रहते हैं।

ससुराल में उनकी आत्मा सदा बेचैन रही। जब मरने लगीं तो बेटे ने पूछा कि लाश करबला जाएगी या नजफ़, तो बिगड़ गईं। बोलीं, "ए बेटा जउन तूँ से हमरी लाश ना सँभाली जाए त हमरे घर भेज दिहो।"

मौत सिर पर थी इसलिए उन्हें यह याद नहीं रह गया कि अब घर कहाँ है। घरवाले कराची में हैं और घर कस्टोडियन[13] का हो चुका है। मरते वक्त किसी को ऐसी छोटी-छोटी बातें भला कैसे याद रह सकती हैं। उस वक्त तो मनुष्य अपने सबसे ज़्यादा खूबसूरत सपने देखता है (यह कथाकार का खयाल है, क्योंकि वह अभी तक मरा नहीं है!) इफ़्फ़न की दादी को भी अपना घर याद आया। उस घर का नाम कच्ची हवेली था। कच्ची इसलिए कि वह मिट्टी की बनी थी। उन्हें दसहरी आम का वह बीजू पेड़[14] याद आया जो उन्होंने अपने हाथ से लगाया था और जो उन्हीं की तरह बूढ़ा हो चुका था। ऐसी ही छोटी-छोटी और मीठी-मीठी बेशुमार[15] चीज़ें याद आईं। वह इन चीज़ों को छोड़कर भला करबला या नजफ़ कैसे जा सकती थीं!

वह बनारस के 'फ़ातमैन' में दफ़न की गईं क्योंकि मुरतुज़ा हुसैन की पोस्टिंग उन दिनों वहीं थी। इफ़्फ़न स्कूल गया हुआ था। नौकर ने आकर खबर दी कि बीबी का देहांत हो गया। इफ़्फ़न की दादी बीबी कही जाती थीं।

इफ़्फ़न तब चौथे में पढ़ता था और टोपी से उसकी मुलाकात हो चुकी थी।

इफ़्फ़न को अपनी दादी से बड़ा प्यार था। प्यार तो उसे अपने अब्बू, अपनी अम्मी, अपनी बाजी[16] और छोटी बहन नुज़हत से भी था परंतु दादी से वह ज़रा ज़्यादा प्यार किया करता था। अम्मी तो कभी-कभार डाँट मार लिया करती थीं। बाजी का भी यही हाल था। अब्बू भी कभी-कभार घर को कचहरी[17] समझकर फैसला सुनाने लगते थे। नुज़हत को जब मौका मिलता उसकी कापियों पर तसवीरें बनाने लगती थीं। बस एक दादी थी जिन्होंने कभी उसका दिल नहीं दुखाया। वह रात को भी उसे बहराम डाकू, अनार परी, बारह बुर्ज, अमीर हमज़ा, गुलबकावली, हातिमताई, पंच फुल्ला रानी की कहानियाँ सुनाया करती थीं।

"सोता है संसार जागता है पाक[18] परवरदिगार। आँखों की देखी नहीं कहती। कानों की सुनी कहती हूँ कि एक मुलुक[19] में एक बादशाह रहा...."

---

13. जिस संपत्ति पर किसी का मालिकाना हक न हो उसका संरक्षण करने वाला विभाग 14. आम की गुठली से उगाया गया आम का पेड़ 15. बहुत सारी 16. बड़ी बहन 17. न्यायालय 18. पवित्र 19. देश

दादी की भाषा पर वह कभी नहीं मुसकराया। उसे तो अच्छी-भली लगती थी। परंतु अब्बू नहीं बोलने देते थे। और जब वह दादी से इसकी शिकायत करता तो वह हँस पड़तीं, "अ मोरा का है बेटा! अनपढ़ गँवारन की बोली तूँ काहे को बोले लग्यो। तूँ अपने अब्बा ही की बोली बोलौ।" बात खत्म हो जाती और कहानी शुरू हो जाती–

"त ऊ बादशा का किहिस कि तुरंते ऐक ठो हिरन मार लिआवा...।"

यही बोली टोपी के दिल में उतर गई थी। इफ़्फ़न की दादी उसे अपनी माँ की पार्टी की दिखाई दीं। अपनी दादी से तो उसे नफ़रत थी, नफ़रत। जाने कैसी भाषा बोलती थीं। इफ़्फ़न के अब्बू और उसकी भाषा एक थी।

वह जब इफ़्फ़न के घर जाता तो उसकी दादी ही के पास बैठने की कोशिश करता। इफ़्फ़न की अम्मी और बाजी से वह बातचीत करने की कभी कोशिश ही न करता। वे दोनों अलबत्ता[20] उसकी बोली पर हँसने के लिए उसे छेड़तीं परंतु जब बात बढ़ने लगती तो दादी बीच-बचाव करवा देतीं–

"तैं काहे को जाथै उन सभन के पास मुँह पिटावे को झाड़ू मारे। चल इधिर आ..." वह डाँटकर कहतीं। परंतु हर शब्द शक्कर का खिलौना बन जाता। अमावट[21] बन जाता। तिलवा[22] बन जाता...और वह चुपचाप उनके पास चला जाता।

"तोरी अम्माँ का कर रहीं..." दादी हमेशा यहीं से बात शुरू करतीं। पहले तो वह चकरा जाता कि यह अम्माँ क्या होता है। फिर वह समझ गया कि माता जी को कहते हैं।

यह शब्द उसे अच्छा लगा। अम्माँ। वह इस शब्द को गुड़ की डली की तरह चुभलाता रहा। अम्माँ। अब्बू। बाजी।

फिर एक दिन गज़ब हो गया।

डॉक्टर भृगु नारायण शुक्ला नीले तेल वाले के घर में भी बीसवीं सदी प्रवेश कर चुकी थी। यानी खाना मेज़-कुरसी पर होता था। लगती तो थालियाँ ही थीं परंतु चौके पर नहीं।

उस दिन ऐसा हुआ कि बैंगन का भुरता उसे ज़रा ज़्यादा अच्छा लगा। रामदुलारी खाना परोस रही थी। टोपी ने कहा–

"अम्मी, ज़रा बैगन का भुरता।"

अम्मी!

मेज़ पर जितने हाथ थे रुक गए। जितनी आँखें थीं वो टोपी के चेहरे पर जम गईं।

अम्मी! यह शब्द इस घर में कैसे आया। अम्मी! परंपराओं की दीवार डोलने लगी।

"ये लफ़्ज़[23] तुमने कहाँ सीखा?" सुभद्रादेवी ने सवाल किया।

---

20. बल्कि 21. पके आम के रस को सुखाकर बनाई गई मोटी परत 22. तिल का लड्डू/तिल से बने व्यंजन 23. शब्द

"लफ़्ज़?" टोपी ने आँखें नचाईं। "लफ़्ज़ का होता है माँ?"

"ये अम्मी कहना तुमको किसने सिखाया है?" दादी गरज़ीं।

"ई हम इफ़्फ़न से सीखा है।"

"उसका पूरा नाम क्या है?"

"ई हम ना जानते।"

"तैं कउनो मियाँ के लइका से दोस्ती कर लिहले बाय का रे?"

रामदुलारी की आत्मा गनगना गई।

"बहू, तुमसे कितनी बार कहूँ कि मेरे सामने गँवारों की यह ज़बान न बोला करो।" सुभद्रादेवी रामदुलारी पर बरस पड़ीं।

लड़ाई का मोरचा बदल गया।

दूसरी लड़ाई के दिन थे। इसलिए जब डॉक्टर भृगु नारायण नीले तेल वाले को यह पता चला कि टोपी ने कलेक्टर साहब के लड़के से दोस्ती गाँठ ली है तो वह अपना गुस्सा पी गए और तीसरे ही दिन कपड़े और शक्कर के परमिट ले आए।

परंतु उस दिन टोपी की बड़ी दुर्गति[24] बनी। सुभद्रादेवी तो उसी वक्त खाने की मेज़ से उठ गईं और रामदुलारी ने टोपी को फिर बहुत मारा।

"तैं फिर जय्यबे ओकरा घरे?"

"हाँ।"

"अरे तोहरा हाँ में लुकारा आगे माटी मिलऊ।"

...रामदुलारी मारते-मारते थक गई। परंतु टोपी ने यह नहीं कहा कि वह इफ़्फ़न के घर नहीं जाएगा। मुन्नी बाबू और भैरव उसकी कुटाई[25] का तमाशा देखते रहे।

"हम एक दिन एको रहीम कबाबची[26] की दुकान पर कबाबो खाते देखा रहा।" मुन्नी बाबू ने टुकड़ा लगाया।

कबाब!

"राम राम राम!" रामदुलारी घिन्ना के दो कदम पीछे हट गईं। टोपी मुन्नी की तरफ़ देखने लगा। क्योंकि असलियत यह थी कि टोपी ने मुन्नी बाबू को कबाब खाते देख लिया था और मुन्नी बाबू ने उसे एक इकन्नी रिश्वत की दी थी। टोपी को यह मालूम था परंतु वह चुगलखोर नहीं था। उसने अब तक मुन्नी बाबू की कोई बात इफ़्फ़न के सिवा किसी और को नहीं बताई थी।

"तूँ हम्में कबाब खाते देखे रह्यो?"

"ना देखा रहा ओह दिन?" मुन्नी बाबू ने कहा।

---

24. बुरी हालत 25. पिटाई 26. कबाब बनाने वाला

"तो तुमने उसी दिन क्यों नहीं बताया?" सुभद्रादेवी ने सवाल किया।

"इ झुट्ठा है दादी!" टोपी ने कहा।

उस दिन टोपी बहुत उदास रहा। वह अभी इतना बड़ा नहीं हुआ था कि झूठ और सच के किस्से में पड़ता—और सच्ची बात तो यह है कि वह इतना बड़ा कभी नहीं हो सका। उस दिन तो वह इतना पिट गया था कि उसका सारा बदन दुख रहा था। वह बस लगातार एक ही बात सोचता रहा कि अगर एक दिन के वास्ते वह मुन्नी बाबू से बड़ा हो जाता तो समझ लेता उनसे। परंतु मुन्नी बाबू से बड़ा हो जाना उसके बस में तो था नहीं। वह मुन्नी बाबू से छोटा पैदा हुआ था और उनसे छोटा ही रहा।

दूसरे दिन वह जब स्कूल में इफ़्फ़न से मिला तो उसने उसे सारी बातें बता दीं। दोनों जुगराफ़िया[27] का घंटा छोड़कर सरक गए। पंचम की दूकान से इफ़्फ़न ने केले खरीदे। बात यह है कि टोपी फल के अलावा और किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाता था।

"अय्यसा ना हो सकता का की हम लोग दादी बदल लें," टोपी ने कहा। "तोहरी दादी हमरे घर आ जाएँ अउर हमरी तोहरे घर चली जाएँ। हमरी दादी त बोलियो तूँहीं लोगन को बो-ल-थीं।"

"यह नहीं हो सकता।" इफ़्फ़न ने कहा, "अब्बू यह बात नहीं मानेंगे। और मुझे कहानी कौन सुनाएगा? तुम्हारी दादी को बारह बुर्ज की कहानी आती है?"

"तूँ हम्मे एक ठो दादियो ना दे सकत्यो?" टोपी ने खुद अपने दिल के टूटने की आवाज़ सुनी।

"जो मेरी दादी हैं वह मेरे अब्बू की अम्माँ भी तो हैं।" इफ़्फ़न ने कहा।

यह बात टोपी की समझ में आ गई।

"तुम्हारी दादी मेरी दादी की तरह बूढ़ी होंगी?"

"हाँ।"

"तो फ़िकर न करो।" इफ़्फ़न ने कहा, "मेरी दादी कहती हैं कि बूढ़े लोग मर जाते हैं।"

"हमरी दादी ना मरिहे।"

"मरेगी कैसे नहीं? क्या मेरी दादी झूठी हैं?"

ठीक उसी वक्त नौकर आया और पता चला कि इफ़्फ़न की दादी मर गईं।

इफ़्फ़न चला गया। टोपी अकेला रह गया। वह मुँह लटकाए हुए जिमनेज़ियम में चला गया। बूढ़ा चपरासी एक तरफ़ बैठा बीड़ी पी रहा था। वह एक कोने में बैठकर रोने लगा।

शाम को वह इफ़्फ़न के घर गया तो वहाँ सन्नाटा था। घर भरा हुआ था। रोज़ जितने लोग हुआ करते थे उससे ज़्यादा ही लोग थे। परंतु एक दादी के न होने से टोपी के लिए घर खाली हो चुका था। जबकि उसे दादी का नाम तक नहीं मालूम था। उसने दादी के हज़ार कहने के बाद भी उनके हाथ की कोई चीज़ नहीं खाई थी। प्रेम इन बातों का पाबंद नहीं होता। टोपी और दादी में एक ऐसा

27. भूगोल शास्त्र

ही संबंध हो चुका था। इफ़्फ़न के दादा जीवित होते तो वह भी इस संबंध को बिलकुल उसी तरह न समझ पाते जैसे टोपी के घरवाले न समझ पाए थे। दोनों अलग-अलग अधूरे थे। एक ने दूसरे को पूरा कर दिया था। दोनों प्यासे थे। एक ने दूसरे की प्यास बुझा दी थी। दोनों अपने घरों में अजनबी और भरे घर में अकेले थे। दोनों ने एक-दूसरे का अकेलापन मिटा दिया था। एक बहत्तर बरस की थी और दूसरा आठ साल का।

"तोरी दादी की जगह हमरी दादी मर गई होतीं त ठीक भया होता।" टोपी ने इफ़्फ़न को पुरसा[28] दिया।

इफ़्फ़न ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे इस बात का जवाब आता ही नहीं था। दोनों दोस्त चुपचाप रोने लगे।

(3)

टोपी ने दस अक्तूबर सन् पैंतालीस को कसम खाई कि अब वह किसी ऐसे लड़के से दोस्ती नहीं करेगा जिसका बाप ऐसी नौकरी करता हो जिसमें बदली होती रहती है।

दस अक्तूबर सन् पैंतालीस का यूँ तो कोई महत्त्व नहीं परंतु टोपी के आत्म-इतिहास में इस तारीख का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसी तारीख को इफ़्फ़न के पिता बदली पर मुरादाबाद चले गए। इफ़्फ़न की दादी के मरने के थोड़े ही दिनों बाद यह तबादला[29] हुआ था, इसलिए टोपी और अकेला हो गया क्योंकि दूसरे कलेक्टर ठाकुर हरिनाम सिंह के तीन लड़कों में से कोई उसका दोस्त न बन सका। डब्बू बहुत छोटा था। बीलू बहुत बड़ा था। गुड्डू था तो बराबर का परंतु केवल अंग्रेज़ी बोलता था। और यह बात भी थी कि उन तीनों को इसका एहसास[30] था कि वे कलेक्टर के बेटे हैं। किसी ने टोपी को मुँह नहीं लगाया।

माली और चपरासी टोपी को पहचानते थे। इसलिए वह बँगले में चला गया। बीलू, गुड्डू और डब्बू उस समय क्रिकेट खेल रहे थे। डब्बू ने हिट किया। गेंद सीधी टोपी के मुँह पर आई। उसने घबराकर हाथ उठाया। गेंद उसके हाथों में आ गई।

"हाउज़ दैट!"

हेड माली अंपायर था। उसने उँगली उठा दी। वह बेचारा केवल यह समझ सका कि जब 'हाउज दैट' का शोर हो तो उसे उँगली उठा देनी चाहिए।

"हू आर यू?" डब्बू ने सवाल किया।

"बलभद्दर नरायन।" टोपी ने जवाब दिया।

"हू इज़ योर फ़ादर?" यह सवाल गुड्डू ने किया।

---

28. सांत्वना देना 29. बदली/स्थानांतरण 30. अनुभूति

"भृगु नरायण।"

"एं।" बीलू ने अंपायर को आवाज़ दी, "ई भिरगू नरायण कौन ऐ? एनी ऑफ़ अवर चपरासीज़?"

"नाहीं साहब।" अंपायर ने कहा, "सहर के मसहूर दागदर हैं।"

"यू मीन डॉक्टर?" डब्बू ने सवाल किया।

"यस सर!" हेड माली को इतनी अंग्रेज़ी आ गई थी।

"बट ही लुक्स सो क्लम्ज़ी।" बीलू बोला।

"ए!" टोपी अकड़ गया। "तनी जबनिया सँभाल के बोलो। एक लप्पड़ में नाचे लगिहो।"

"ओह यू..." बीलू ने हाथ चला दिया। टोपी लुढ़क गया। फिर वह गालियाँ बकता हुआ उठा। परंतु हेड माली बीच में आ गया और डब्बू ने अपने अलसेशियन को शुशकार[31] दिया।

पेट में सात सुइयाँ भुकीं तो टोपी के होश ठिकाने आए। और फिर उसने कलेक्टर साहब के बँगले का रुख नहीं किया। परंतु प्रश्न यह खड़ा हो गया कि फिर आखिर वह करे क्या? घर में ले-देकर बूढ़ी नौकरानी सीता थी जो उसका दुख-दर्द समझती थी। तो वह उसी के पल्लू में चला गया और सीता की छाया में जाने के बाद उसकी आत्मा भी छोटी हो गई। सीता को घर के सभी छोटे-बड़े डाँट लिया करते थे। टोपी को भी घर के सभी छोटे-बड़े डाँट लिया करते थे। इसलिए दोनों एक-दूसरे से प्यार करने लगे।

"टेक मत किया करो बाबू!" एक रात जब मुन्नी बाबू और भैरव का दाज[32] करने पर वह बहुत पिटा तो सीता ने उसे अपनी कोठरी में ले जाकर समझाना शुरू किया।

बात यह हुई कि जाड़ों के दिन थे। मुन्नी बाबू के लिए कोट का नया कपड़ा आया। भैरव के लिए भी नया कोट बना। टोपी को मुन्नी बाबू का कोट मिला। कोट बिलकुल नया था। मुन्नी बाबू को पसंद नहीं आया था। फिर भी बना तो था उन्हीं के लिए। था तो उतरन। टोपी ने वह कोट उसी वक्त दूसरी नौकरानी केतकी के बेटे को दे दिया। वह खुश हो गया। नौकरानी के बच्चे को दे दी जाने वाली चीज़ वापस तो ली नहीं जा सकती थी, इसलिए तय हुआ कि टोपी जाड़ा खाए।

"हम जाड़ा-ओड़ा ना खाएँगे। भात खाएँगे।" टोपी ने कहा।

"तुम जूते खाओगे।" सुभद्रादेवी बोलीं।

"आपको इहो ना मालूम की जूता खाया ना जात पहिना जात है।"

"दादी से बदतमीज़ी करते हो।" मुन्नी बाबू ने बिगड़कर कहा।

"त का हम इनकी पूजा करें।"

फिर क्या था! दादी ने आसमान सिर पर उठा लिया। रामदुलारी ने उसे पीटना शुरू किया..

31. कुत्ते को किसी के पीछे लगाने के लिए निकाली जाने वाली आवाज़ 32. (मूल शब्द दाँज) बराबरी

"तूँ दसवाँ में पहुँच गइल बाड़।" सीता ने कहा, "तूँहें दादी से टर्राव[33] के त ना न चाही। किनों ऊ तोहार दादी बाड़िन।"

सीता ने तो बड़ी आसानी से कह दिया कि वह दसवें में पहुँच गया है, परंतु यह बात इतनी आसान नहीं थी। दसवें में पहुँचने के लिए उसे बड़े पापड़ बेलने पड़े। दो साल तो वह फ़ेल ही हुआ। नवें में तो वह सन् उनचास ही में पहुँच गया था, परंतु दसवें में वह सन् बावन में पहुँच सका।

जब वह पहली बार फ़ेल हुआ तो मुन्नी बाबू इंटरमीडिएट में फ़र्स्ट आए और भैरव छठे में। सारे घर ने उसे ज़बान की नोक पर रख लिया। वह बहुत रोया। बात यह नहीं थी कि वह गाउदी[34] था। वह काफ़ी तेज़ था परंतु उसे कोई पढ़ने ही नहीं देता था। वह जब पढ़ने बैठता मुन्नी बाबू को कोई काम निकल आता या रामदुलारी को कोई ऐसी चीज़ मँगवानी पड़ जाती जो नौकरों से नहीं मँगवाई जा सकती थी—यह सब कुछ न होता तो पता चलता कि भैरव ने उसकी कापियों के हवाई जहाज़ उड़ा डाले हैं।

दूसरे साल उसे टाइफ़ाइड हो गया।

तीसरे साल वह थर्ड डिवीज़न में पास हो गया। यह थर्ड डिवीज़न कलंक के टीके की तरह उसके माथे से चिपक गया।

परंतु हमें उसकी मुश्किलों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

सन् उनचास में वह अपने साथियों के साथ था। वह फ़ेल हो गया। साथी आगे निकल गए। वह रह गया। सन् पचास में उसे उसी दर्जे में उन लड़कों के साथ बैठना पड़ा जो पिछले साल आठवें में थे।

पीछे वालों के साथ एक ही दर्जे में बैठना कोई आसान काम नहीं है। उसके दोस्त दसवें में थे। वह उन्हीं से मिलता, उन्हीं के साथ खेलता। अपने साथ हो जाने वालों में से किसी के साथ उसकी दोस्ती न हो सकी। वह जब भी क्लास में बैठता उसे अपना बैठना अजीब लगता। उस पर सितम[35] यह हुआ कि कमज़ोर लड़कों को मास्टर जी समझाते तो उसकी मिसाल देते—

"क्या मतलब है साम अवतार (या मुहम्मद अली?) बलभद्र की तरह इसी दर्जे में टिके रहना चाहते हो क्या?"

यह सुनकर सारा दर्जा हँस पड़ता। हँसने वाले वे होते जो पिछले साल आठवें में थे।

वह किसी-न-किसी तरह इस साल को झेल गया। परंतु जब सन् इक्यावन में भी उसे नवें दर्जे में ही बैठना पड़ा तो वह बिलकुल गीली मिट्टी का लौंदा[36] हो गया, क्योंकि अब तो दसवें में भी

33. ज़बान लड़ाना/बड़बड़ करना 34. भोंदू/बुद्धू 35. अत्याचार 36. गीली मिट्टी का पिंड

कोई उसका दोस्त नहीं रह गया था। आठवें वाले दसवें में थे। सातवें वाले उसके साथ! उनके बीच में वह अच्छा-खासा बूढ़ा दिखाई देता था।

वह अपने भरे-पूरे घर ही की तरह अपने स्कूल में भी अकेला हो गया था। मास्टरों ने उसका नोटिस लेना बिलकुल ही छोड़ दिया था। कोई सवाल किया जाता और जवाब देने के लिए वह भी हाथ उठाता तो कोई मास्टर उससे जवाब ना पूछता। परंतु जब उसका हाथ उठता ही रहा तो एक दिन अंग्रेज़ी-साहित्य के मास्टर साहब ने कहा–

"तीन बरस से यही किताब पढ़ रहे हो, तुम्हें तो सारे जवाब ज़बानी याद हो गए होंगे! इन लड़कों को अगले साल हाई स्कूल का इम्तहान देना है। तुमसे पारसाल पूछ लूँगा।"

टोपी इतना शर्माया कि उसके काले रंग पर लाली दौड़ गई। और जब तमाम बच्चे खिलखिलाकर हँस पड़े तो वह बिलकुल मर गया। जब वह पहली बार नवें में आया था तो वह भी इन्हीं बच्चों की तरह बिलकुल बच्चा था।

फिर उसी दिन अबदुल वहीद ने रिसेज़ में वह तीर मारा कि टोपी बिलकुल बिलबिला उठा।

वहीद क्लास का सबसे तेज़ लड़का था। मॉनीटर भी था। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह लाल तेल वाले डॉक्टर शरफ़ुद्दीन का बेटा था।

उसने कहा, "बलभद्दर! अबे तो हम लोगन[37] में का घुसता है। एड्थ वालन से दोस्ती कर। हम लोग तो निकल जाएँगे, बाकी तुहें त उन्हीं सभन के साथ रहे को हुइहै।"

यह बात टोपी के दिल के आर-पार हो गई और उसने कसम खाई कि टाइफ़ाइड हो या टाइफ़ाइड का बाप, उसे पास होना है।

परंतु बीच में चुनाव आ गए।

डॉक्टर भृगु नारायण नीले तेल वाले खड़े हो गए। अब जिस घर में कोई चुनाव के लिए खड़ा हो गया हो उसमें कोई पढ़-लिख कैसे सकता है!

वह तो जब डॉक्टर साहब की ज़मानत ज़ब्त हो गई तब घर में ज़रा सन्नाटा हुआ और टोपी ने देखा कि इम्तहान सिर पर खड़ा है।

वह पढ़ाई में जुट गया। परंतु ऐसे वातावरण में क्या कोई पढ़ सकता था? इसलिए उसका पास ही हो जाना बहुत था।

"वाह!" दादी बोलीं, "भगवान नज़रे-बद[38] से बचाए। रफ़्तार अच्छी है। तीसरे बरस तीसरे दर्जे में पास तो हो गए।..."

37. लोग 38. बुरी नज़र

बोध-प्रश्न

1. इफ़्फ़न टोपी शुक्ला की कहानी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा किस तरह से है?
2. इफ़्फ़न की दादी अपने पीहर क्यों जाना चाहती थीं?
3. इफ़्फ़न की दादी अपने बेटे की शादी में गाने-बजाने की इच्छा पूरी क्यों नहीं कर पाईं?
4. 'अम्मी' शब्द पर टोपी के घरवालों की क्या प्रतिक्रिया हुई?
5. दस अक्तूबर सन् पैंतालीस का दिन टोपी के जीवन में क्या महत्त्व रखता है?
6. टोपी ने इफ़्फ़न से दादी बदलने की बात क्यों कही?
7. पूरे घर में इफ़्फ़न को अपनी दादी से ही विशेष स्नेह क्यों था?
8. इफ़्फ़न की दादी के देहांत के बाद टोपी को उसका घर खाली-सा क्यों लगा?
9. टोपी और इफ़्फ़न की दादी अलग-अलग मजहब और जाति के थे पर एक अनजान अटूट रिश्ते से बँधे थे। इस कथन के आलोक में अपने विचार लिखिए।
10. टोपी नवीं कक्षा में दो बार फ़ेल हो गया। बताइए—
    (क) ज़हीन होने के बावजूद भी कक्षा में दो बार फ़ेल होने के क्या कारण थे?
    (ख) एक ही कक्षा में दो-दो बार बैठने से टोपी को किन भावात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ा?
    (ग) टोपी की भावात्मक परेशानियों को मद्देनज़र रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक बदलाव सुझाइए?
11. इफ़्फ़न की दादी के मायके का घर कस्टोडियन में क्यों चला गया?